ओ३म्

9.3

# अमृतं गमय

ओ३म्। भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।

ओ३म्
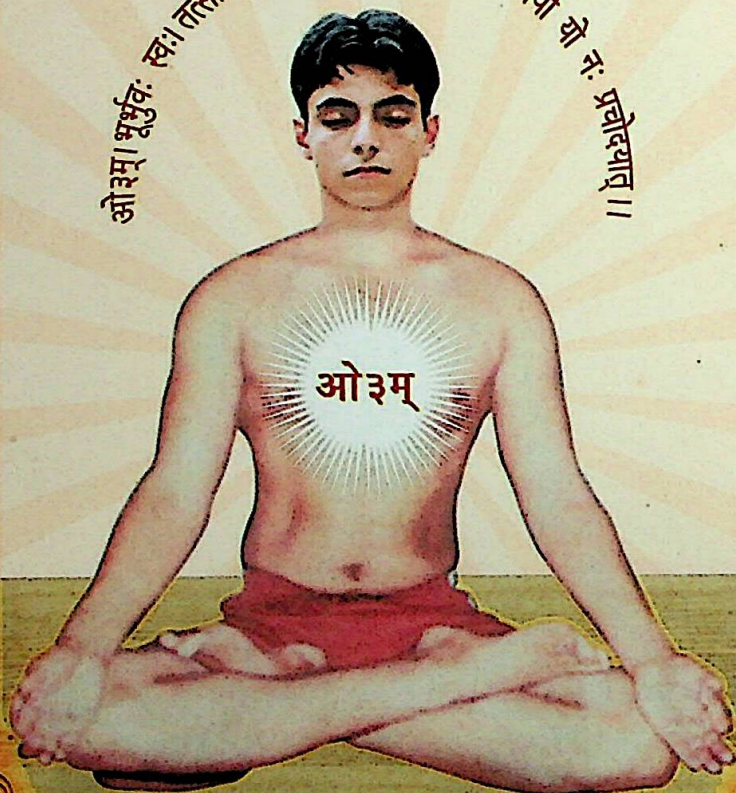
लेखिका : सरोज आर्या

ओ३म्

# अमृतं गमय

(सत्यार्थ प्रकाश के नवम समुल्लास के आधार पर)

श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास, उदयपुर

द्वारा

अखिल भारतीय सत्यार्थप्रकाश निबन्ध प्रतियोगिता 2004

तृतीय पुरस्कार से पुरस्कृत निबन्ध

लेखिका

सरोज आर्या

प्रकाशक :

स्वामी सेवानन्द सरस्वती

अध्यक्ष

वैदिक धर्म-प्रचार प्रसार न्यास जयपुर

487, नमक की मण्डी, किशन पोल बाजार, जयपुर (राज.)

फोन न० 0141-2312508, 98282-33877

प्रथम संस्करण

वि. स. 2061, सन् 2004 ई.



मुद्रक :

मदरलैण्ड प्रिंटिंग प्रेस

6-7, गीता भवन, बीस दुकान, आदर्श नगर, जयपुर-302004.

फोन : 2609179

# समर्पण

स्वामी सेवानन्द जी सरस्वती
अकेले चल दिये थे
जिन्दगी की राह पर
हमनें इन्हें अपना लिया आदर्श मानकर।
सादगी जिनका आभूषण हो
आर्य समाज ही जिनका आदर्श हो
कर्म जिनका विश्वास हो
नम्रता–विनम्रता जिनमें विराजमान हो
आत्म निर्भरता जिनका आकर्षण हो
हमने इन्हें अपना लिया........
एक कुशल स्वाधीनता सेनानी
जिन्होंने अपनी दूरदर्शिता और
त्याग से आजादी के वृक्ष को
पुष्पित और पल्लवित किया॥ हमने......
दानवीर, दयाशीलता से परिपूर्ण
जिनका निश्च्छल हदय ही जन–जन के
दिल में बसा हो
उसी साधारण आदर्श मानव को
'अमृतं गमय' विमोचन पर हमारा सादर नमन।

सेवानन्द सरस्वती
वैदिक धर्म–प्रचार–प्रसार न्यास
परिवार की ओर से

ओ३म्
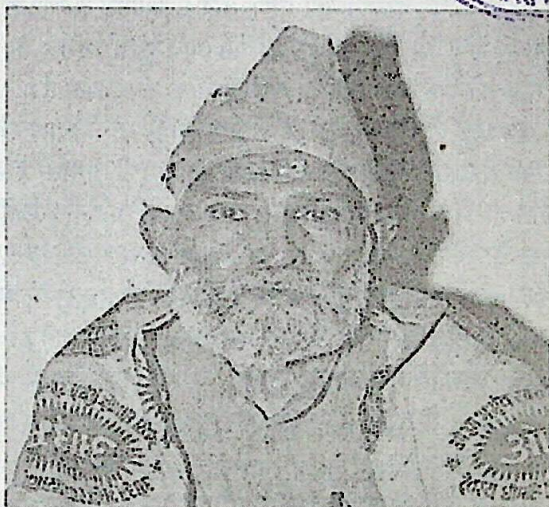
त्याग, तपस्या से समर्पित प्रेरणास्त्रोत-

## स्वामी सेवानन्द सरस्वती

भारत एवं राजस्थान सरकार से सम्मानित 85 वर्षीय वयोवृद्ध स्वतंत्रता सेनानी स्वामी श्री सेवानन्द जी सरस्वती (पूर्व नाम श्री हरीसिंह आर्य) राष्ट्र, समाज एवं परिवार के प्रति सर्वस्व त्याग-तपस्या की मूर्ति हमारे प्रेरणा के मार्गदर्शक हैं। राष्ट्र को आजादी दिलाने में आपने 18 वर्ष की अल्प आयु में हैदराबाद के निजाम के अत्याचारों, और दमन चक्र के विरूद्ध स्वतंत्रता आन्दोलन में अपनी आहुति समर्पित की जिसके लिये आपको देश की जेलों में कठोर से कठोर यातनायें दी गई-यथा बर्फ पर सोना, रोटी-दाल में मिट्टी-कंकड़ों की मिलावट का विरोध क़रने पर जेल में ही आमरण अनशन किया।

आपको अपनी राष्ट्र भाषा हिन्दी से प्रगाढ़ प्रेम है। जेलों में अंग्रेज अफसरों के अंग्रेजी भाषा बोलने पर इनके द्वारा विरोध करने पर पैरों में बेड़ियां डालकर "काल कोठरी" में बन्द किया गया।

आप महर्षि दयानन्द के सच्चे भक्त हैं। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के सिद्धान्तों को अपने जीवन में व्यवहारिक रूप दिया है। आपने सिद्धान्तों के अनुरूप गृहस्थ आश्रम से वानप्रस्थ आश्रम एवं सन्यास आश्रम की दीक्षा ली है। वर्तमान में आप सन्यास आश्रम की दीक्षा-अपने गुरू स्वामी सर्वदानन्द जी, स्व० ओमानन्द जी सरस्वती से प्राप्त करके महर्षि दयानन्द सरस्वती के तीर्थ स्थल ऋषि उद्यान, अजमेर में जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

आपने निश्चय करके वैदिक धर्म प्रचार-प्रसार हेतु स्वामी सेवानन्द सरस्वती न्यास का गठन किया है जिसमें पैंशन से मिलने वाली राशि को बैंक में जमा कराके उसकी ब्याज राशि से वैदिक धर्म-प्रचार-प्रसार का निर्णय लिया है।

आपके पुत्र श्री ओमप्रकाश वर्मा, राजस्थान परिवहन निगम में प्रशासनिक अधिकारी के पद पर कार्यरत हैं तथा अपने पिताजी की प्रेरणा और आशीर्वाद से वैदिक संस्कृति को राष्ट्र में जन-जन तक पहुंचाने में कार्यरत हैं। आप राजस्थान आर्य युवक परिषद् के, स्वामी सेवानन्द सरस्वती न्यास के महामंत्री एवं आर्य समाज, कृष्णपोल के उप प्रधान हैं।

आपकी पुत्रवधू श्रीमती सरोज वर्मा (आर्या) भी वैदिक संस्कृति के प्रति समर्पित हैं। आप स्वयं प्रकाश चन्द्र जी कविरत्न की सुपुत्री श्रीमती स्नेहलता शर्मा के आशीर्वाद एवं सानिध्य में वैदिक संस्कृति से ओत-प्रोत भजनों-गीतों को संगीतमय बना रही हैं तथा संगीत के साथ-साथ ही श्रीमती वर्मा सत्यार्थ प्रकाश प्रतियोगिता-उदयपुर में आयोजित निबंध प्रतियोगिता में भाग लेकर वर्ष 2003 में महिला समूह में तृतीय एवं वर्ष 2004 में संयुक्त समूह में तृतीय स्थान प्राप्त किया है।

आपकी पुत्री श्रीमती प्रेमलता खुराना का पाणिग्रहण संस्कार भी आर्य परिवार में दिल्ली डिफैंस कॉलोनी में हुआ है। जहां पूर्ण परिवार महर्षि दयानन्द सरस्वती के बताये हुए मार्गों पर चल रहा हैं।

आपकी सुपोत्री डॉ० हेमलता भारती भी राजकीय होम्यो० चिकित्सालय में सेवारत हैं। श्रीमती भारती अपने दादाजी के न्यास का संचालन करने में पूर्ण सहयोग प्रदान कर रही है। डॉ० हेमलता भारती का ससुराल भी भारतीय संस्कृति का जीता-जागता उदाहरण है।

हम आदरणीय स्वामी सेवानन्द जी सरस्वती को नमन् करते हुए परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि आप शतम् जीवेम् शरदशतात् को पूर्ण करें तथा हम पर अपना आशीर्वाद बनाये रखें।

विनीत

धर्मवीर खुराना
डिफैंस कॉलोनी
नई दिल्ली

मयंक भारती
54, बरकत नगर
जयपुर

**विशेष अनुरोध**

इस पुस्तक का प्रकाशन स्वामी सेवानन्द सरस्वती के आशीर्वाद से वैदिक धर्म प्रचार-प्रसार हेतु कराया गया है जिसका कोई मूल्य नहीं रखा गया है। स्वामी सेवानन्द सरस्वती न्यास को वैदिक धर्म प्रचार-प्रसार हेतु आपका उदार सहयोग हमारा उत्साहवर्धन करेगा।

विनीत
डॉ० हेमलता भारती
कार्य० अध्यक्ष

## ओ३म्

# भूमिका

### "अमृतं गमय"
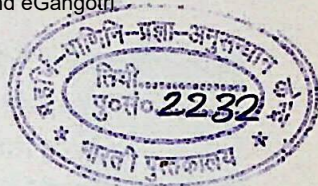
विश्व के सर्वोच्च शिखरारूढ़ श्रेष्ठ महापुरूषों में अन्यतम यम-नियमादि के मूर्त रूप परमपिता परमात्मा की पवित्रतम सन्तान महर्षि दयानंद सरस्वती की प्रख्यात कृति सत्यार्थ प्रकाश भी अपने रचयिता के समान ही ज्ञान-कर्म-उपासना एवं विज्ञान की खान है। जीवन एवं जगत् के सत्य तथा पदार्थ-ज्ञान उसमें आत्मा एवं शरीर के सदृश ही जीवित जागृत रूप में एकाकार हैं। इसके प्रथम से प्रारंभ कर दशम समुल्लास तक की सुवासित पुष्पों की माला उत्तरोत्तर विकास की स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्मतर एवं सूक्ष्मतम चिन्तन-दर्शन एवं वैदिक-विद्या की निः सरणी है। नवम समुल्लास में ऋषि ने विद्या-अविद्या-बंध-मोक्ष के सूक्ष्म एवं मानव जीवन के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विषय का प्रकाश किया है। इसमें ऋषि ने वेद एवं तदनुसारिणी मनुस्मृति, उपनिषदों, षडदर्शन शास्त्रों आदि तथा अपनी शास्त्र-बुद्धि परामृष्ट प्रातिभ शक्ति के आश्रय से जड़वादियों, नास्तिकों-पाखंडी नव-नव संप्रदायाभिनिवेश वादियों तथा नवीन वेदान्तियों के ध्वान्ताच्छन्न मतों का तीक्ष्णता से खंडन कर आर्य-आर्य वैदिक सत्य परंपरा को परिपुष्ट किया है। योगसूत्र के वचन **'अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्य शुचि सुखात्मख्यातिरविद्या'** को उदधृत कर ऋषि कहते हैं-अपवित्र में पवित्र बुद्धि, अत्यन्त विषय सेवन रूप दुःख में सुख बुद्धि, अनित्य में नित्यभाव, अनात्मा में आत्मबुद्धि करना ये अविद्या के चार भाग हैं। इसके विपरीत अनित्य में अनित्य और नित्य में नित्य, अपवित्र में अपवित्र और पवित्र में पवित्र, दुःख में दुःख, सुख में सुख, अनात्मा में अनात्मा और आत्मा में आत्मा का ज्ञान होना विद्या है। जिससे पदार्थों का यथार्थ स्वरूप-बोध होंवे व विद्या एवं जिससे तत्त्व स्वरूप न जान पड़े, अन्य में अन्यबुद्धि होवे, वह अविद्या कहाती है।

बंध का अविद्या से एवं मुक्ति का विद्या से प्रगाढ सम्बन्ध है। मुक्ति में जीव ब्रह्म मे रहता है, परन्तु उसमें लय नहीं होता उसे पुनः संसार चक्र में आना होता है। दुःख के अत्यन्त अभाव तथा ब्रह्मानन्द का संख्यातीत काल का भोग करना मुक्ति है। जीव के अनित्य एवं सीमित साधनों से नित्य एवं असीम आनन्द नहीं मिल सकता। प्रश्नोत्तर पद्धति के माध्यम से महर्षि ने मतवादियों की मिथ्या अवैदिक धारणाओं का प्रबलता के साथ निराकरण किया है। जिस-जिस गुण से जिस-जिस गति को जीव प्राप्त होता है उस-उस को भी ऋषि ने राजर्षि मनु के श्लोकों को उद्धृत कर स्पष्ट किया है, योगशास्त्र के सूत्र **'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थाम्'** अर्थात जब चित्त एकाग्र और निरूद्ध होता है, तब सब के द्रष्टा ईश्वर के स्वरूप में जीवात्मा की स्थिति होती है और सांख्य के सूत्र **'अत्रत्रिविधदुःखात्यन्त निवृतिरत्यन्तपुरूषार्थ'** अर्थात् आध्यात्मिक, अधिभौतिक

एवं अधिदैविक इस त्रिविध दुःख को छुड़ा कर मुक्ति पाना अत्यन्त पुरूषार्थ है। इन अन्तिम सूत्रों को अंकित कर अपने मंतव्य को सूत्रबद्ध एवं संकेतबद्ध कर दिया है।

प्रसन्नता का विषय है कि श्रीमती सरोज आर्या (वर्मा) (श्रीयुत ओ३म् प्रकाश जी वर्मा की धर्मपत्नी) ने अपनी अल्पकालिक अध्ययन पृष्ठभूमि के बल पर इस गंभीर विषय को समझ कर पुनराख्यान करने का साहस जुटाया है। वैदिक ज्ञान-विज्ञान एवं जीवन के अमाप एवं अतल आकाश तथा सागर में अवगाहन करने का कृच्छ्र-पथ बहन सरोज ने चुना है। वे अधिकाधिक अध्ययन-सोपानों पर आरोहण कर आत्म-तुष्टि प्राप्त कर लेखादि के, भजन-व्याख्यान आदि के द्वारा जन-कल्याण में सफल हों, यही प्रभु से कामना है।

डॉ. मदनमोहन जावलिया

972, किसान मार्ग, बरकत नगर, टोंक रोड, जयपुर

## आत्म-निवेदन

अपनी कृति किसे अच्छी नहीं लगती अत्यन्त तुच्छ, सुधी एवं कृतीजनों की दृष्टि में छोटे लोगों की रचना का भले ही महत्त्व न हो किन्तु सृजन का सुख एवं आनन्द की अनुभूति जिसे होती है वह ब्रह्मानंद सहोदर ही है। विश्व के मनीषियों में शिरोमणि महर्षि दयानंद एक महान् ईश्वर पुत्र-अमृत सन्तान थे, वीतराग थे, किन्तु क्या उन्हें जगदुद्धारक कार्यों एवं अपनी लोकोपकार कारक संदेश निधियों सत्यार्थ प्रकाश ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका एवं संस्कार विधि की रचना में अवर्णनीय सुखानुभूति नहीं हुई होगी? मेरे तन्मयतापूर्ण एवं सुरुचितापूर्ण अध्ययन के प्रथम सोपान में सत्यार्थ प्रकाश के अध्ययन में मुझे भी वैसा ही उल्लास प्राप्त हुआ है और इस निमित्त सत्यार्थ प्रकाश न्यास उदयपुर द्वारा प्रवर्तित **'विद्या-अविद्या, बंध मोक्ष'** विषयक नवम समुल्लास पर मैंने जो निबंध लिखा उसकी रचना में मुझे हार्दिक सुख एवं आत्म गौरव की अनुभूति हुई। और जब विद्वानों ने जाँच के उपरान्त उसे तृतीय स्थान का अधिकारी माना तो मेरे हर्ष का पारावार नहीं रहा, इसी उल्लास के परिणाम स्वरूप निबंध का यह प्रकाशित रूप नीर-क्षीर विद्वानों एवं सामान्य जनों के लिए समीक्षा तथा पठन हेतु मैंने प्रस्तुत किया है।

आशा है मेरे इस लघु प्रयास को आशीर्वाद, प्रशंसा एवं साधुवाद का पात्र माना जायेगा।

विनीत

दि......... 25 सितम्बर-2004

सरोज आर्या (वर्मा)

सदस्या-आर्यसमाज कृष्णपोल, जयपुर (राज.)

एमपी/अज/नदि/ 44 /2004

प्रिय श्री वर्मा जी

सप्रेम नमस्ते!

आशा है आप सपरिवार प्रभु की कृपा से स्वस्थ एवं प्रसन्नचित्त होंगे। 14वीं लोकसभा में मेरे द्वारा विजयश्री प्राप्त करने पर आपने जो बधाई एवं शुभकामना प्रेषित की है, उसके लिए हार्दिक धन्यवाद।
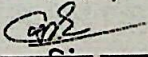
यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास उदयपुर द्वारा आयोजित अखिल भारतीय सत्यार्थ प्रकाश निबंध प्रतियोगिता 2004 में नवम समुल्लास के आधार पर **"मोक्ष क्या, क्यों व कैसे?"** विषय पर आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सरोज वर्मा ने तृतीय स्थान प्राप्त किया है। तदर्थ श्रीमती वर्मा को हार्दिक बधाई प्रेषित करता हूँ। यह और भी हर्ष का विषय है कि स्वामी सेवानन्द सरस्वती (श्री हरिसिंह जी आर्य, स्वतंत्रता सेनानी) वैदिक धर्म प्रचार-प्रसार न्यास ने सत्यार्थ प्रकाश के नवम समुल्लास के आधार पर **"मोक्ष क्या, क्यों व कैसे?"** नामक पुरस्कृत निबंध को पुस्तक के रूप में प्रकाशन करवा कर प्रचार-प्रसार हेतु निशुल्क वितरण करने का निश्चय किया है। न्यास के संरक्षक के नाते मेरी ओर से इस प्रकल्प हेतु हार्दिक शुभकामनाएं एवं बधाई स्वीकार करें।

स्वराज्य के प्रथम मंत्रदृष्टा, सामाजिक क्रांति के अग्रदूत तथा भारतीय पुनर्जागरण के पुरोधा एवं आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा लिखित सत्यार्थ प्रकाश एक क्रांतिकारी विचारधारा का ग्रंथ है, जिसमें स्वामी जी ने प्रारम्भिक दशम समुल्लास **'मंडन'** के और अंतिम चार समुल्लास अविद्या एवं असत्य पर आधारित मत-मतान्तरों के **'खंडन'** पर लिखे हैं। मोक्ष के संबंध में विभिन्न मत-मतान्तरों के अलग-अलग दृष्टिकोण हैं तथा मोक्ष (मरणोपरान्त मुक्ति) के संबंध में कई भ्रान्त धारणाएँ हैं। परन्तु वैदिक धर्म के पुनरूद्धारक, महान् दार्शनिक तथा तत्वान्वेषक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेद मंत्रों तथा आर्य ग्रन्थों के आधार पर गहन अध्ययन कर मोक्ष **"मोक्ष क्या, क्यों व कैसे?"** विषय का विशद विवेचन किया है जो विज्ञान सम्मत एवं सर्वग्राह्य है।

निश्चय ही इस प्रकाशन के निःशुल्क वितरण से जनसाधारण मे मोक्ष संबंधी भ्रान्त धारणाओं का मूलोच्छेदन होगा तथा मोक्ष का वैदिक स्वरूप स्पष्ट प्रतिपादित होगा।

सादर।

भवदीय,

रासासिंह रावत

श्री ओमप्रकाश वर्मा<br>
मंत्री, स्वामी सेवानन्द सरस्वती (श्री हरिसिंह जी आर्य, स्वतंत्रता सेनानी)<br>
वैदिक धर्म प्रचार-प्रसार न्यास,<br>
487, नमक की मंडी, किशनपोल बाजार,<br>
जयपुर (राजस्थान)

ओ३म्

वेद प्रचार मंडल-जयपुर,
अध्यक्ष-बी. एल. अग्रवाल
एडवोकेट

श्रीमती सरोज जी वर्मा,
सादर नमस्ते!

आशा है आप सपरिवार प्रभु की कृपा से स्वस्थ एवं प्रसन्नचित्त होंगी। यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास उदयपुर द्वारा आयोजित अखिल भारतीय सत्यार्थ प्रकाश निबन्ध प्रतियोगिता 2004 में नवम समुल्लास के आधार पर **"मोक्ष क्या, क्यों व कैसे ?"** विषय पर आपने तृतीय स्थान प्राप्त किया है। तदर्थ वेद प्रचार मण्डल जयपुर की और से आपको हार्दिक बधाई प्रेषित कर रहा हूँ।

यह और भी हर्ष का विषय है कि आपकी इस विषय की पुस्तक का प्रकाशन स्वामी सेवानन्द सरस्वती (श्री हरीसिंह जी आर्य स्वतंत्रता सेनानी) वैदिक-धर्म प्रचार-प्रसार न्यास की और से करवाया जाकर प्रचार-प्रसार हेतु निःशुल्क वितरण करने का निश्चय किया गया है। इसके लिये मैं न्यास को हार्दिक शुभकामनायें समर्पित करता हूँ।

भारतीय संस्कृति के पुनर्जागरण के पुरोधा, वेदों को राष्ट्र में जन-जन तक पहुँचाने वाले महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा लिखित सत्यार्थ-प्रकाश एक क्रान्तिकारी विचार धारा का अमूल्य ग्रन्थ है। मोक्ष के सम्बन्ध में विभिन्न मत-मतान्तरों के अलग-अलग सिद्धान्त हैं परन्तु वैदिक धर्म के महान दार्शनिक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेद मंत्रों तथा आर्य ग्रन्थों के आधार पर अध्ययन करके **"मोक्ष क्या, क्यों व कैसे ?"** विषय पर अच्छा विवेचन किया है।

निश्चय ही इस पुस्तक के प्रकाशन से जन साधारण को **"मोक्ष"** सम्बन्धी सत्य धारणाओं की जानकारी मिलेगी।

भवदीय
श्री बी. एल. अग्रवाल
(एडवोकेट)

## ओ३म्

## "अनुभूमिका एवं आशीर्वाद"

श्रीमती सरोज जी वर्मा स्वाध्यायशील महिला हैं। लेखन, प्रवचन व भजन संगीत, में उनकी रूचि है तथा अपने स्वाध्याय से निरन्तर प्रगति कर रही हैं।

सत्यार्थ प्रकाश न्यास, उदयपुर प्रतिवर्ष अपने उत्सव पर अन्य कार्यक्रमों के साथ-साथ निबन्ध प्रतियोगिता भी आयोजित करता है जिसमें पूर्व घोषित विषय जो सत्यार्थ प्रकाश के एक सम्मुल्लास से सम्बन्धित होता है, पर विद्वान लेखक आर्य नर-नारियाँ लेख लिखकर भेजते हैं। इन लेखों का मूल्यांकन किया जाकर अंको के आधार पर वरीयता क्रम से पारितोषिक भी प्रदान किया जाता है।

इस वर्ष 2004 का विषय बड़ा जटिल "मुक्ति क्या, क्यों और कैसे ?" था। श्रीमती सरोज जी वर्मा ने अपने स्वाध्याय के आधार पर लेख लिखकर भेजा व यह बड़ी प्रसन्नता व गौरव की बात है कि इन्हें पुरूष एवं महिला वर्ग में 'तृतीय' स्थान प्राप्त करने पर पुरस्कार प्रदान किया गया।

इस पुस्तिका के द्वारा इस निबंध को छपवाकर निःशुल्क वितरण करने का विचार और भी उत्तम कर्म है। वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु जो भी किया जाये प्रशंसनीय है। मैं इस लेख को लिखने व पारितोषिक प्राप्त करने के लिये श्रीमती सरोज जी वर्मा को हृदय से आशीर्वाद देता हूँ व परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि उनका उत्साह बढ़ता रहे व इस दिशा में प्रगति करती रहे। स्वाध्याय, लेखन, प्रवचन, व संगीत भजन के क्षेत्र में उनकी सतत् प्रगति की कामना करता हूँ।

सेवा निवृत प्राचार्य
विजय बिहारी लाल माथुर
शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय एवं पूर्व प्रधान,
आर्य समाज कृष्णपोल बाजार जयपुर
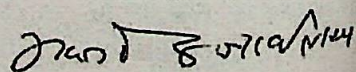
## ओ३म्

चैत्र पूर्णिमा संवत् २०६१ (दिनांक ५-४-२००४)

आर्यसमाज किशनपोल जयपुर की सदस्या बहन श्रीमती सरोज वर्मा एक समर्पित श्रोता एवं कार्यकर्त्री ही नहीं हैं, अपितु सतत् प्रगति पथ पर अग्रसर बहुआयामी आर्य-कार्यकर्त्री है। इन्होंने जहाँ स्वर-माधुरी द्वारा संगीत-साधना में अग्रणी स्थान बनाया है, वहीं अध्ययन, मनन, चिंतन द्वारा मंच पर सत्यार्थ प्रकाश पर आधारित व्याख्यान देने में योग्यता अर्जित की है। पिछले दो वर्षों से इनकी प्रवृत्ति आर्य साहित्य का गंभीर विवेचन करने की ओर भी परिलक्षित हुई है। फलस्वरूप प्रथम वर्ष में इन्होंने श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास, नवलखा महल, गुलाब बाग महर्षि दयानन्द मार्ग, उदयपुर द्वारा आयोजित अष्टम समुल्लास पर आधारित निबंध प्रतियोगिता में महिला लेखिकाओं में सान्त्वना पुरस्कार प्राप्त किया और दूसरे वर्ष में (सन् 2003-2004) समस्त प्रतिभागियों में तृतीय स्थान प्राप्त किया तथा विद्या-अविद्या एवं मोक्ष विषय का विशद विवेचन प्रस्तुत किया है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि उक्त प्रतियोगिता अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की होती है तथा कोई भी व्यक्ति इसमें भाग ले सकता है।

मात्र एक श्रोता के साधारण स्थान से आगे बढ़कर स्वयं वक्ता, लेखिका एवं व्याख्याता बनना श्रीमती सरोज वर्मा की एक बड़ी उपलब्धि है। विशेषतः इसलिए भी कि ये मूलतः गुजराती भाषी परिवार की पुत्री हैं और हिन्दी में लेखन कार्य का अभ्यास भी कोई अधिक पुराना नहीं है। श्रीमती सरोज की अभिरुचि एवं अभ्यास-वृद्धि में इनके पतिदेव, आर्यसमाज किशनपोल के पूर्व मंत्री एवं संप्रति उपप्रधान श्री ओ३म् प्रकाश वर्मा का योगदान भी है। साथ ही आर्यसमाज में इनकी नियमित उपस्थिति तथा सत्संग का लाभ लेने की अभिरुचिपूर्ण तत्परता का भी सहयोग है। इस निमित्त जहाँ श्री वर्मा बधाई के पात्र हैं, वहीं श्रीमती सरोज की प्रगति भी अभिनंदनीय है। और इस आधार पर यह शुभानुशंसा करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि ये आगामी 2-3 वर्षों में ही अधिकाधिक प्रशंसा-योग्य स्थान आर्यजगत् में बना पायेंगीं।

डॉ. मदनमोहन जावलिया

मदनमोहन जावलिया

# दो शब्द

आत्मा स्वभावतः आनन्द रस का पिपासु है। अतः इसी के अन्वेषण में नानाविध योनियों के माध्यम से संसार वन में भटकता है। किसी को राज मार्ग मिल जाता है तो अधिकांश जन संसार वन के मधुर-सरस और सुन्दर फलों के रस को आनन्द रस मानकर आनन्दाभास करते हुए जन्म-जन्मान्तर की पगडण्ड़ियों में उलझा रहता है। इस उलझन से निकल कर मानव जीवन लक्ष्य को जाने ओर उसे पाने का प्रयास करें एतद विषयक विवरण दयालु देव दयानन्द ने अमर ग्रंन्थ सत्यार्थ-प्रकाश के नवम समुल्लास में सुन्दर उल्लेख किया। इसी समुल्लास को आध्रर मानकर विदुषी लेखिका श्रीमती सरोज वर्मा ने सर्वजनगम्य "अमृतं गमय" नामक पुस्तिका का प्रणयन किया है। विश्वास करता हूँ पुस्तिका के स्वाध्याय से सर्वसाधारण का मार्ग प्रशस्त होगा तथा मैं इस प्रयास की सफलता और प्रसार की कामना करता हूँ। निश्चित ही लेखिका इस सत्प्रयास के लिए साधुवाद की पात्रा है। अनेकशः शुभकामनाएं।

विदुषामनुचरः

रामपाल विद्याभास्कर

डॉ० रामपाल विद्याभास्कर समन्वयक
नैतिक शिक्षा विभाग
डी. ए. वी. शिक्षण संस्थान
राजस्थान
डी. ए. वी. पब्लिक स्कूल
वैशाली नगर, जयपुर

# ओ३म्

सत्य और असत्य का विवेक, धर्म और अधर्म की व्याख्या, प्रभु से मिलाने क मार्गदर्शन यदि किसी ग्रन्थ में एक स्थान पर खोजना हो तो वह महान् ग्रन्थ है।

**"सत्यार्थ प्रकाश"**

सत्यार्थ प्रकाश **"सत्य"** का ऐसा प्रकाश स्तम्भ है जिसे पढ़कर मन औ मस्तिष्क पर छाया अज्ञान-तिमिर स्वतः समाप्त हो, ज्ञान और सत्य प्रकट होकर, अन्त को आलोक से भर देता है। धर्म के नाम पर अधर्म, पुण्य के नाम पर पाप और सत्य के नाम पर असत्य तभी तक कहीं रह सकता है जब तक कि वहां **"सत्यार्थ प्रकाश"** नहीं पहुंचा हो।

वस्तुतः इस भौतिक युग में आज भटके हुए मानव समुदाय को मृत्यु मार्ग से हटाने और जीवन पथ पर चलाने की सामर्थ्य यदि किसी ग्रन्थ में है तो वह है **"सत्यार्थ प्रकाश"**।

श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास, उदयपुर की ओर से सन् 1996 से प्रतिवर्ष सत्यार्थ प्रकाश निबन्ध प्रतियोगिता आयोजित की जाती है।

श्रीमती सरोज वर्मा को भी वैदिक संस्कृति विरासत में मिली है तथा सत्यार्थ प्रकाश के गहन अध्ययन एवं उनके चिन्तन करने की प्रेरणा मेरे द्वारा प्रदान की गई। इनके द्वारा इसी प्रेरणा व आशीर्वाद से सत्यार्थ प्रकाश प्रतियोगिता 2003 में भाग लिया तथा महिला वर्ग में द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

श्रीमती सरोज ने इसके पश्चात् भी सत्यार्थ प्रकाश का अध्ययन, चिंतन प्रारम्भ रखा तथा वर्ष 2004 में श्रीमद दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश निंबध प्रतियोगिता में नवम् समुल्लास के आधार पर **"मोक्ष क्या, क्यों व कैसे?"** में भाग लिया तथा पूर्ण प्रतियोगिता में तृतीय स्थान प्राप्त किया। यह पुरस्कार, स्वाध्याय करने की प्रवृति को निरन्तर वृद्धि करने के कारण ही प्राप्त हुआ है।

इस पुस्तक के प्रकाशन करने का मुख्य उद्देश्य-वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार करने का है। अतः इस पुण्य कार्य हेतु श्रीमती सरोज को पूर्ण आशीर्वाद प्रदान करता हूँ।

**स्वामी सेवानन्द सरस्वती**
स्वतंत्रता सेनानी

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम

# स्वामी सेवानन्द सरस्वती (हरिसिंह आर्य, स्वतन्त्रता सेनानी) वैदिक धर्म प्रचार-प्रसार न्यास

प्रदेश का :- म.नं. 487, नमक की मंडी, किशनपोल वाजार, जयपुर, दूरभाष:- 2312508
98282-33877
अध्यक्षीय का :- स्वामी सेवानन्द सरस्वती, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर- 2621891



## विनम्र आभार

प्रिय पाठकों,

सादर नमस्ते

भारत एवं राजस्थान शासन से सम्मानित श्री स्वामी सेवानन्द जी सरस्वती (हरीसिंह आर्य) स्वतंत्रता सेनानी हैं। आपने भारत की स्वाधीनता के लिये आर्यसमाज के नेतृत्व में त्याग-तपस्या की आहूति प्रदान की हैं। आपके त्याग-तपस्या को मध्यनजर करते हुए स्वतंत्रता सेनानी का सम्मान भारत एवं राजस्थान शासन ने ताम्र पत्र से सम्मानित किया है।

आप महर्षि दयानन्द सरस्वती के सच्चे शिष्य हैं आपने उनके सिद्धान्तों को अपने जीवन में, परिवार में व्यवहारिक रूप से चरितार्थ किया है।

भारत देश में वैदिक संस्कृति का घर-घर में प्रचार हो, राष्ट्र, पुनः सोने की चिड़िया कहलाये, वैदिक संस्कृति प्रत्येक के जीवन में आचरित हो- आपने स्वतंत्रता सेनानी के द्वारा प्राप्त पैंशन से स्वामी सेवानन्द सरस्वती-वैदिक धर्म-प्रचार-प्रसार न्यास की स्थापना की है जिसकी निधि से ही श्रीमती सरोज जी द्वारा लिखा गया "अमृतं गमय" का प्रकाशन करवाया जा रहा है। इस पुस्तक के प्रकाशन हेतु निम्न का उदार सहयोग हमारे उत्साहवर्धन में सहयोगशील रहे हैं:-

आदरणीय श्री विजय बिहारीलाल जी माथुर, श्री डॉ० मदनमोहन जावलिया जी के प्रति आभार व्यक्त करते हैं जिनके मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद से भाषा शैली को अलंकृत किया गया।

श्री अशोक आर्य-कार्यालय अध्यक्ष-श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास उदयपुर ने पुस्तक के मुख्यपृष्ट के लिये अपना मार्गदर्शन प्रदान किया।

स्वर्गीय पं० प्रकाशचन्द जी कविरत्न की पुत्री श्रीमती स्नेहलता शर्मा-पार्श्व रेडियो गायिका ने 500/- रू. का आर्थिक सहयोग प्रदान किया है।

आर्यसमाज कृष्णापोल बाजार के प्रधान-श्री अरविन्द गुप्ता, मंन्त्री-कौशलाधीश मिश्र ने आर्य समाज की ओर से इस पुनीत कार्य में भविष्य में प्रेरणा हेतु 1000/- रू. का आर्थिक सहयोग दिया है।

(शेष प्रष्ठ (xiv) पर)

# ओ३म्

प्रत्येक प्रकार के दुःखों से छूटने की संज्ञा मोक्ष है। मोक्ष के आनन्द का आधार ब्रह्म है। मोक्षावस्था में आत्मा दुःखानुभूति से सर्वथा मुक्त रहती है। भौतिक पदार्थों से सुखानुभूति होती है परन्तु आनन्दानुभूति असम्भव है। यह आनन्द मोक्ष में ही सुलभ है। मोक्षावस्था में आत्मा की सत्ता तो रहती है परन्तु शरीर नहीं होता क्योंकि शरीर के रहते सुख व दुःख अवश्यम्भावी है। मुण्डकोपनिषद ३/२/६ के अनुसार मुक्त जीव आनन्द को भोग कर परान्तकाल अर्थात् ३१ नील १० खरब और ४० अरब वर्ष पश्चात् पुनः संसार में लौटते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक **अमृतं गमय** में इस विषय का प्रतिपादन श्रीमती सरोज वर्मा ने जिस बोधगम्य शैली में प्रस्तुत किया है वह अत्यन्त सराहनीय है। वेद स्वाध्याय एवं प्रचार-प्रसार में इन दम्पति का समर्पण अत्यधिक सराहनीय एवं प्रेरणादायक है। हमारी ईश्वर से प्रार्थना है कि यह स्वाध्याय एवं वेद प्रचार-प्रसार की अग्नि इनके अन्तःस्थल में सदैव प्रज्ज्वलित रहे, जिससे आर्यजगत लाभान्वित होता रहे।

अरविन्द गुप्ता
प्रधान

कौशलाधीश मिश्र
मन्त्री
आर्य समाज कृष्णपोल बाजार
जयपुर

**( प्रष्ठ (xiii) का शेष )**

श्रीमान् गुरुमुखदास चन्दवानी कोषाध्यक्ष, आर्यसमाज कृष्णपोल, बाजार जयपुर एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती विमला चन्दवानी-सिंधी कॉलोनी जयपुर के द्वारा 500/- रू. का आर्थिक सहयोग दिया है। आपको वर्ष 1975 में "सत्यार्थ प्रकाश रत्न" की उपाधि प्राप्त हुई हैं। आप असाध्य रोगों हेतु निःशुल्क सेवा प्रदान करते हैं।

श्री बृजमोहन जी शर्मा-पुरानी बस्ती जयपुर ने पुस्तक प्रकाशन में प्रूफ रीडिंग, प्रेस में बैठकर अपना अमूल्य समय देकर इसमें सहयोग प्रदान किया है।

श्री ओमप्रकाश जी विद्यावाचस्पति, कोषाध्यक्ष, आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान, जयपुर, श्री पुरूषोत्तमदास जी, अंतरग सदस्य ने भी पुस्तक प्रकाशन में अपना अमूल्य समय देकर सहयोग प्रदान किया है।

हम आपके आभारी हैं।
आभार सहित

विनीत
(ओम प्रकाश वर्मा)
मंत्री

"ओ३म्"

# मोक्ष क्या, क्यों ? व कैसे!

## नवम समुल्लास के आधार पर

सत्यार्थ प्रकाश 19वीं शताब्दी के धार्मिक एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण के अग्रदूत महर्षि दयानन्द सरस्वती का अनुपम ज्ञानकोष है। जिस प्रकार अंकों में नौ का अंक पूर्णता का द्योतक है उसी प्रकार सत्यार्थ प्रकाश का नवम् समुल्लास भी मानव-जीवन के चरम उत्कर्ष का प्रतिपादक है। महर्षि ने इसमें मानव जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष के स्वरूप, स्थिति, साधन आदि की सुन्दर सारगर्भित विवेचना प्रस्तुत की है। मोक्ष जैसे जटिल विषय की विवेचना भी कोई ऋषि या योगी ही कर सकता है। महर्षि दयानन्द 19वीं शताब्दी के महान योगी थे। महर्षि की मोक्ष संबंधी विचारधारा का मुख्य आधार वेद है जो स्वत: प्रमाण एवं ईश्वरीय ज्ञान है। वेद प्रतिपादित होने से उनकी विचारधारा तर्कसम्मत वैज्ञानिक विचारधारा बन पाई।

## मोक्ष किसे कहते हैं ?

मोक्ष, मुक्ति, कैवल्य, परमधाम आदि शब्द प्राय: एक ही भाव के द्योतक हैं सामान्यत: इनका अर्थ बन्धन अर्थात जन्म मरणादि दु:ख रूप चक्र से छुटकारा पाना ही लिया जाता है, और ऐसी ही परिभाषा भी दी जाती है। मानव-जीवन की मुख्य समस्या दु:खों से छुटकारा पाना है। अत: ईश्वरवादी दार्शनिक हो या अनीश्वरवादी दार्शनिक सभी ने अपने-अपने दृष्टिकोण से इसे सुलझाने का प्रयत्न किया है। प्रत्येक प्राणी दु:ख से छूटकर सुख की कामना करता है। लेकिन संसार में देखते हैं कि कभी चाहते हुए भी सुख प्राप्त नहीं होता तो कभी न चाहते हुए भी दु:ख प्राप्त हो जाता है। दु:ख का सामान्य लक्षण है कि जिससे पीड़ित होकर अथवा पीड़ित होने की संभावना से प्राणी उसके नाश की कोशिश करता है। मात्र कामना करने से दु:ख दूर नहीं होगा, न ही सुख प्राप्त होगा जब तक उनके कारणों का अभाव न हो। हमारी स्थिति यह है कि हम कारण का नाश न करके दु:ख के नाश की बात करते है। यही बात सुख के लिये है। पर क्या दु:खों की अत्यन्त निवृति का नाम ही मोक्ष है ? ऋषि दु:खों के अभाव को ही मोक्ष की संज्ञा नहीं देते, वे दु:खों के अत्यन्त अभाव के साथ-साथ परमानन्द की प्राप्ति भी मानते है। जिसमें परमानन्द की प्राप्ति और ब्रह्म का परम सानिध्य हो, मोक्ष है। ऋषि के शब्दों में मोक्ष की परिभाषा है।

**"जिसमें सब बुरे काम और जन्म मरणादि दु:ख सागर से छूटकर, सुखस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त होके, सुख में ही रहना है, वह मुक्ति कहाती है।"**

मोक्ष की ऐसी सुन्दर, सर्वांगपूर्ण दोषरहित परिभाषा है जिसमें विरोधाभास की जरा भी गुंजाइश नहीं। अतः दुःखों की अत्यन्त निवृति पूर्वक परमानन्द की प्राप्ति कर परब्रह्म में अव्याहत गति से विचरने का नाम ही मोक्ष है।

## मोक्ष का स्वरूप

मोक्ष के स्वरूप के विषय में अर्वाचीन दार्शनिकों में बहुत मतभेद व्याप्त हैं। कोई मोक्ष को अनन्तकाल के लिये तो कोई जीव का ब्रह्म में लय हो जाना मानता है, कोई भौतिक सुखों की चरम सीमा के रूप में मोक्ष की कल्पना करते हैं, तो कोई जीव का जड़वत हो जाना मान बैठे हैं, जिससे मोक्ष का वास्तविक स्वरूप तिरोहित हो गया है। महर्षि के अनुसार भौतिक सुख स्थूल शरीर द्वारा ही भोगा जाता है जब मोक्ष में भौतिक शरीर रहता ही नहीं तो फिर भौतिक सुख का तो प्रश्न ही नहीं है।

**मुक्तात्मा का लय नहीं होता–** तत्वज्ञान से अविद्या का नाश कर जीव मोक्ष प्राप्त करता है। जीव स्वरूप से अविनाशी, अनादि व अनन्त है। मुक्ति में जीव अपना अस्तित्व नहीं खो बैठता । यदि ऐसा हो तो अथक परिश्रम व साधना से प्राप्त मोक्ष का लाभ कौन प्राप्त करेगा? स्थूल शरीर जीव का बाह्यरूप व आत्मा आन्तरिक रूप है अशरीर मुक्तात्मा ईश्वर को प्राप्त होती है। जीवात्मा ईश्वर के साथी के रूप में सदा विद्यमान रहती है।

**"यत्रानुकामं चरणं ................ तत्र माममृतं कृधि"** (ऋग्वेद ९/११३/९)
अर्थात–जहाँ मुक्तात्मा विचरण करते है, वहाँ मुझे मुक्त कर दे।
**"श्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते ................"** (छान्दोग्य उपनिषद ८/१२/३)
अर्थात– जीवात्मा कभी भी अपने स्वरूप का परित्याग नहीं करता वह जो कुछ करता है अपने स्वरूप में स्थित रह कर करता है।

वृहदारण्यकोपनिषद कहता है जैसे नमक की एक डली को मटकी भर पानी में डालने से वह कुछ समय पश्चात पानी में विलय हो जाती है। पानी को चखने से नमक के अस्तित्व का अहसास होता है। यदि पानी में नमक की मात्रा अत्यन्त अल्प कर दी जाय तो पानी में नमक का स्वाद नहीं आता, यद्यपि नमक पानी में विद्यमान है। जल के वाष्पीकरण करने से नमक फिर प्राप्त हो जाता है। इससे ज्ञात होता है कि जल में नमक के अणु अपना अस्तित्व व व्यक्तित्व बनाये रखकर जल में भ्रमण करते हैं। इसी प्रकार अणु जीवात्मा अपने सूक्ष्मरूप में अनन्त विभु असीम निराकार ईश्वर में भ्रमण करता है, उसका लय नहीं होता।

**मोक्षावस्था में जीव का ब्रह्म में लय नहीं होता**– सर्वव्यापक ईश्वर में मुक्तात्मा अव्याहत गति से श्वेन रूपेण ही गति करता है जीव अपने स्वरूप को–खोकर ब्रह्मरूप न होकर ब्रह्मस्थ–अवश्य हो जाता है। मुक्तात्मा का ब्रह्म में लय मुक्ति की पुनरावृति में भी बाधक है। लय होने से मुक्ति अनन्त होगी जो वेद विरूद्ध और अव्यवहारिक है। जीव का ब्रह्म में लय से जीव अनित्य होगा। मुक्तावस्था में ज़ीव ब्रह्म के सामीप्य से नैमित्तिक आनन्द प्राप्त करता है। जैसे लोहा अग्नि के सम्पर्क से रक्त तप्त हो प्रकाशित होता है पर लोहे का गुण विद्यमान रहता हैं।

**"रसौ वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।"** (तैतिरीय उपनिषद २/७)

अर्थात–ब्रह्म आनन्द स्वरूप है उसे पाकर जीव आनन्दमय हो जाता है।

मुण्डकोपनिषद ३/२/८ में लिखा है जैसे–विभिन्न नदियां अपने नाम व रूप को छोडकर अन्त में समुद्र में मिल जाती हैं, वैसे ही मुक्तात्मा अपना अस्तित्व समाप्त कर परात्परब्रह्म को प्राप्त हो जाता है, यथार्थ में ऐसा नहीं, प्रत्येक पदार्थ के दो रूप होते है एक बाह्यरूप जो उसका आकार–प्रकार और रंग–रूप है। दूसरा आन्तरिक सत्ता जिसे वस्तुतत्त्व कहते हैं। जीव का बाह्यरूप शरीर है जिसके विभिन्न नाम है यहां इसी शरीर रूपी अस्तित्त्व के समाप्त होने की बात की गई है। जैसे समुद्र में मिलने से नदियां अपना नाम खो देती है, किन्तु वस्तुतत्त्व जल नष्ट नहीं होता, वह समुद्र के जल में मिलकर उसके जल की मात्रा को बढा देता है। यदि नाम के साथ जल भी नष्ट हो गया होता तो समुद्री जल की मात्रा में वृद्धि नहीं होती। इसी प्रकार मोक्षावस्था में जीवात्मा नष्ट नहीं होता वह परमेश्वर के साथी के रूप में सदा विद्यमान रहता है।

**मुक्ति निमित्त से**– मोक्ष व बन्धन स्वभाव से न होकर निमित्त से होते है। यदि जीवात्मा अनादिकाल से बन्धन में था तो जीवात्मा का यह स्वाभाविक गुण होने से जीव की मुक्ति कभी संभव नहीं। भावरूप पदार्थ नित्य होते है। ऐसे ही यदि मुक्ति को जीव का स्वाभाविक गुण माने तो जीव बन्धन में कभी नहीं आ सकते। जीव का कभी बन्धन में आना व कभी मुक्त होना यह प्रमाणित करता है कि जीवात्मा का स्वभाव न मुक्त है न बद्ध। अतः जीवात्मा के मोक्ष की सिद्धि के लिये यही मानना उचित है कि बन्धन का यह क्रम किसी काल विशेष में शुरू हुआ अर्थात जीव बन्धन के पूर्व मुक्त था। अतः मुक्ति व बन्धन निमित्त से होता है। मोक्ष अनादि नहीं।

**मुक्तात्मा का स्वाभाविक शक्तियों से आनन्द**– शरीर रहते जीवात्मा त्रिविध दुःखों से निवृत्त नहीं हो सकता। मोक्षावस्था में इनकी अत्यन्त निवृत्ति होती है,

आनन्द की अनुभूति मुक्तात्मा का ऐश्वर्य भोग है। मोक्षावस्था में स्थूल शरीर नहीं रहता अतः बाह्य इन्द्रियों व प्राकृत शरीर का संबंध जीव से नहीं रहता किन्तु मननात्मक, शुद्ध संकल्पमय शरीर, प्राण व इन्द्रियों की शुद्ध शक्ति बनी रहती है। ब्रह्म में साक्षात्कार होने पर अशरीरी आत्मा संकल्पमात्र से अपनी कामना सिद्ध करता है। मुक्ति में महर्षि जीव की 24 प्रकार की विशेष सामर्थ्य मानते है।

**"सशरीरः प्रिया प्रियाभ्यामात्तः"** (छान्दोग्य ८/१२/१)

अर्थात–इन्द्रियादि युक्त शरीर का सांसारिक सुख दुःख से घिरे रहना अनिवार्य है।

**"अशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः"** (उपनिषद)

अर्थात–मोक्षावस्था में अशरीर जीवात्मा को सुख दुःख स्पर्श नहीं करते।

**"मनसैतान् कामान् पश्चन् रमते"** (छन्दोग्य उपनिषद ८/१२)

अर्थात–मुक्तात्मा मननात्मक शक्ति से ही सब कामनाओं का उपयोग करते हुए आनन्द में मग्न रहता है।

**"संकल्पादेव तच्छ्रुते"** (वेदान्त सूत्र ४/४/८)

अर्थात–मुक्तात्मा की कामना संकल्प मात्र से सिद्ध हो जाती है।

इससे प्रमाणित है कि अशरीरी मुक्तात्मा इच्छा मात्र से ही देखने के लिये चक्षु, सुनने के लिए कान, चखने के लिये रसना, स्पर्श के लिये त्वचा, निश्चय के लिये बुद्धि व स्मरण के लिये चित्त हो जाता है अर्थात मुक्तात्मा अपने शक्तिरूप से भावनानुसार अनुभव करने लगता है। वह संकल्प आत्मा का स्वसामर्थ्यरूप है। महर्षि का कथन है कि जैसे **"सांसारिक सुख शरीर के आधार से भोगता है, वैसे परमेश्वर के आधार मुक्ति के आनन्द को जीवात्मा भोगता है।"** (स० प्र० नवम् समु० पेज २२७)

**"तस्य सर्वेषु लोकेषु कामाचारो भवति"** (छा० उप० ७/२५/२)

अर्थात–मुक्तात्मा सब लोकों में स्व–इच्छा से संचरण करता है।

आत्मा अणु होने से मोक्षावस्था में ससीम ही रहता है। वह अपनी संकल्पमात्र से भ्रमण तो कर सकता है लेकिन स्व–इच्छा से जन्म नहीं ले सकता, यह ईश्वराधीन है।

**मुक्ति में जीव तथा मन आदि का अस्तित्व**–मुक्ति मनुष्य को जीवनकाल में ही प्राप्त होती है। मुक्ति का अर्थ है कि जीवात्मा का आगे जन्म न होना। जीवनकाल में मोक्ष के साधन उपलब्ध होने के कारण यह प्रयत्न संभव है, किन्तु मरणोपरान्त मोक्ष के साधन अनुपलब्ध होने से तदर्थ प्रयत्न असंभव ही होगा। जीवन मुक्ति का अर्थ है **"परममोक्ष का पूर्ण अधिकारी।"**

**"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।**
**क्षीयन्ते चास्य् कर्माणि तस्मिन्दारे परावनरे।"** (मुण्डको उपनिषद २/२८)

अर्थात–जब मन की गांठ खुल जाती है, सम्पूर्ण संशय दूर हो जाते है और सब कर्म क्षीण हो जाते है तब मनुष्य मोक्ष का अधिकारी होता है।

जीव इसमें दैहिक व्यापार करता हुआ ब्रह्मज्ञानी आनन्द की अनुभूति में लीन रहता है वे जीवन मुक्त कहलाते है। ब्रह्मज्ञानी पाप कर्मों में लिप्त नहीं होता। ऐसा ब्रह्मज्ञानी यज्ञादि पुण्य कर्म, दान, तप आदि शुभ कर्म करता है। यह शुभ कर्म ब्रह्मज्ञान में सहायक है। शरीर रहित मुक्ति इसकी उत्तरावस्था है। सुषुप्ति व निद्रावस्था को भी मुक्ति कहा जाता है। सुषुप्ति मुक्ति शरीर सहित किन्तु ज्ञानरहित है। समाधि व जीवन्मुक्त में मुक्ति सशरीर व ज्ञानसहित होती है। तो मरणोपरान्त मुक्ति शरीर रहित किन्तु ज्ञानसहित होती है।

**''समाधि सुषुप्ति मोक्षेषु ब्रह्मरूपता''** (सांख्य दर्शन ५/७९)

अर्थात–समाधि, सुषुप्ति और मोक्ष में ब्रह्मरूपता–त्रिविध दुःखों से निवृत्ति होकर आनन्दानुभूति होती है।

मोक्षावस्था में सूक्ष्म व स्थूल शरीर दोनों ही नहीं रहते। अतः इस दशा में शुद्ध संकल्प मन को जीवात्मा का **''दैव चक्षु''** कहा जाता है जिसमें वह तीनों काल भूतकाल, भविष्यकाल व वर्तमान काल के विषय में मनन करता है और ब्रह्म में रमण करता हुआ सब सुखों को भोगता है।

**''तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति''** (छान्दोग्य ७/२५/२)

अर्थात–वह इच्छानुसार सब लोकों में संचरण करता है।

**जीव ईश्वर के सदृश कभी नहीं होता**– बन्धनयुक्त जीव कालान्तर में मुक्त होकर भी ईश्वर सदृश कभी नहीं हो सकता। ईश्वर स्वभाव से नित्यशुद्ध बुद्ध–मुक्त व आनन्दस्वरूप है। जीव स्वभाव से अल्पज्ञ और परिमित गुण–कर्म स्वभाव वाला है। मुक्त जीव का यह स्वभाव अपरिवर्तित है। जैसे लोहा आग के सम्पर्क से कुछ काल के लिये रक्त तप्त हो प्रकाश देता है, परन्तु अपना गुण नहीं त्यागता, वैसे ही जीव आनन्द स्वरूप ब्रह्म के सम्पर्क में आनन्दयुक्त हो जाता है। निमित्त से आनन्दमय जीव, नित्य आनन्दस्वरूप के समान नहीं हो सकता है। स्पष्ट है कि अनित्य व नित्य में समानता संभव नहीं। शंकर व रामानुज दोनों मत में भी सृष्टि की उत्पत्ति–स्थिति तथा प्रलय और ईश्वर के स्वाभाविक गुण मुक्तात्मा को प्राप्त नहीं हो सकते।

## मुक्ति से पुनरावृत्ति

वेद में प्रमाणित है कि मुक्तात्मा एक निश्चितकाल तक ईश्वर के सानिध्यमें परमानन्द भोगकर पुनः मनुष्य योनि में जन्म धारण करता है। इसे मुक्ति से पुनरावृत्ति का

सिद्धान्त कहते है। इसे सर्वप्रथम ऋषि दयानन्द ने उद्घोषित किया, ऋषि मुक्ति को अनन्त नहीं अपितु सान्त मानते है।

**"जीव एक निश्चित समय तक मुक्ति का आनन्द भोगकर पुनः माता-पिता के दर्शन करता अर्थात जन्म धारण करता है।"** (स०प्र०नवम समु०)

जैसे निद्रा के पश्चात् जागरण व जागरण के पश्चात निद्रा का क्रम ऐसे ही रात के बाद दिन, व दिन के बाद रात का क्रम है, वैसे ही जन्म-मरण के बन्धन के बाद मोक्ष व मोक्ष के बाद बन्धन का क्रम निरन्तर चलता रहता है। इस प्रकार दो मुक्तियों के बीच बन्धन का व दो बन्धनों के बीच मुक्ति का यह क्रम अनादि है। इस विषय में ऋषि एक प्रबल तर्क प्रस्तुत करते हैं कि सीमायुक्त कर्म सामर्थ्य, शक्ति, ज्ञानवाले जीव के परिमित ज्ञान व साधनों से प्राप्त मुक्ति अनन्त व असीम कैसे हो सकती है?

जीवों के भोग का सामर्थ्य भी सीमित है फिर स्वल्प सामर्थ्य वाले जीव के आनन्द का भोग भी सीमित ही होगा।

अवतारवाद में विश्वास करने वाले पौराणिक भी स्वयं ईश्वर का सशरीर इस धरती पर अवतार लेना मानते है। स्वभाव से अजन्मा, नित्ययुक्त ईश्वर समय-समय पर जन्म ले सकता है तो बारम्बार बन्धन में पड़ने वाले जीव की मनुष्यरूप में मुक्ति से पुनरावृत्ति क्यों नहीं हो सकती?

उपनिषद आदि ग्रन्थों में मुक्ति से पुनरावृत्ति के प्रमाण उपलब्ध है।

**"स खल्वेवं वर्तयन्यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसंपद्यते न च पुनरावत्तते।"**

(छन्दोग्य ८/१५/१)

अर्थात-जब तक ब्रह्मलोक में स्थित है तब तक जीव वहीं रहता है, अवधि की समाप्ति के पूर्व नहीं लौटता।

यहाँ 'यावदायुषम' शब्द ब्रह्मलोक में जीव के रहने की अवधि के लिये आया है।

**"ए तेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्त्त नावर्त्तन्ते"** (छान्दोग्य ४/१५/५)

अर्थात-देवयान से ब्रह्मलोक को प्राप्त हुआ ज्ञानी आत्मा इस मानव-आवर्त्त में नहीं लौटता।

'इमम्' विशेषण से ज्ञात होता है कि मुक्तात्मा इस कल्प में नहीं लौटता, लेकिन कालान्तर में लौटता है।

**"स एतान्ब्रह्म गमयत्येष देवपथो ब्रह्मपथ एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्त नावर्तन्ते"** (छान्दोग्य उपनिषद ४/१५/६)

अर्थात-ज्ञानी पुरूष परमात्मा को प्राप्त होकर मन्वन्तर के इस चक्र में वापस नहीं आता।

## पुनरावृत्ति पर शंका

वैदिक सिद्धान्त पर आधारित "मुक्ति से पुनरावृत्ति" से लोगों को शंका होती है कि मुक्तावस्था में जीव के सभी कर्मों का क्षय होता है एवं मुक्तात्मा कोई नवीन कर्म भी नही करता फिर पुनरावृत्ति की दशा में किन कर्मों के आधार पर उसका पुनर्जन्म होता है। ऐसी ही शंका मनुष्य योनि के अतिरिक्त अन्य निम्न योनियों यथा पशु, पक्षी, वनस्पतियां भी कोई नवीन कर्म नहीं करता, तब केवल जीवकृत कर्मों के फल को भोगकर वह फिर मनुष्य योनि में किस प्रकार आता है इसको स्पष्ट करने के लिये एक उदाहरण देखते हैं-एक अपराधी को अपराध के दण्डस्वरूप कारागार में डाला जाता है, वह वहाँ अपने दुष्कर्मों का फल भोगकर निश्चित अवधि पर मुक्त कर दिया जाता है इस अन्तराल मे वह कोई नवीन कार्य भी नहीं करता। जेल से मुक्त होने के लिये उसके वही कर्म थे जिन कर्मों के दण्डस्वरूप उसे सजा मिली थी। ऐसे ही मुक्तात्मा व पशु-पक्षियों के लिये है। अपनी योनि (अवधि) पूर्ण कर लौट आना स्वाभाविक ही नहीं आवश्यक भी है मुक्तात्मा को नवीन कर्मों के सम्पादन की आवश्यकता नहीं होती, पूर्व-कृत कर्मों के आधार पर जीव पुनरावृत्ति से मनुष्य योनि में जन्म धारण करता है।

## पुनरावृत्ति पर एक आपत्ति

जब मुक्ति से लौटकर आना निश्चित ही है तो फिर उसके लिये व्यर्थ ही इतना श्रम क्यों? अनेक जन्मों के अथक परिश्रम से प्राप्त मोक्ष भी यदि अनित्य हो तो उसकी प्राप्ति के लिये अथाह श्रम क्यों? ऋषि अनुपम तर्कणा शक्ति एवं सूझ-बूझ से युक्तिपूर्वक मार्मिक उत्तर देते हैं-**"कि जब प्रातःभोजन करते हैं फिर भी सायंकाल तो भूख लग ही आती है। ऐसी स्थिति में भी कोई क्षुधानिवृत्ति के उपायों से उपराम नहीं होता अपितु उसकी निवृत्ति के लिये सदैव प्रयत्नशील ही रहते हैं। जब बार-बार भूख लगने पर भी उसकी निवृति के उपायों को व्यर्थ नही समझते तो फिर कल्पनातीत काल के लिये मोक्षानन्द की प्राप्ति के लिये किया जाने वाला श्रम व्यर्थ कैसे हो सकता है?"** (स०प्र०नवम समु०)

क्षणिक क्षुधानिवृति के लिये किया गया श्रम व्यर्थ समझते ही नही अपितु उसकी साधन प्राप्ति में रात-दिन प्रयत्नशील भी रहते है, **"जातस्य ही ध्रुवो मृत्यु"** जो उत्पन्न हुआ है, समय आने पर उसकी मृत्यु भी निश्चित है-यह जानते हुए भी हम जीना ही नहीं चाहते अपितु उसके लिये निरन्तर प्रयत्नशील भी रहते है। अतः यह आपत्ति सर्वथा निराधार है।

## पुनरावृत्ति न होने से अनेक दोष

मुक्ति से पुनरावृत्ति प्रमाणित है। जैसे सृष्टि प्रवाह से अनादि है वैसे ही मुक्ति प्रवाह से अनादि है। रचना का मुख्य उद्देश्य भी जीवों के फलोपभोग के लिये है।

पुनरावृत्ति न होने से संसार का अन्त हो जायेगा। किन्तु आज तक संसार का अत्यन्त उच्छेद कभी नहीं हुआ।

यह कहना कि सर्वशक्तिमान ईश्वर मुक्तात्माओं के स्थान पर और अन्य जीव को उत्पन्न कर सृष्टि क्रम को चालू रख सकता है यह भी वेद विरूद्ध है। यह कहना ईश्वर जो चाहे सो कर सकता है यह धारणा भी निराधार है। ईश्वर सर्वशक्तिमान है इसका अर्थ यही है कि ईश्वर अपने सब कार्य जैसे सृष्टि का नियमन और प्रलय और असंख्य जीवों के कर्मानुसार कर्मफल प्रदान करना है। ईश्वर जीव को न उत्पन्न कर सकता है और न मार सकता है। जीव नित्य है, उत्पन्न जीव की मृत्यु भी निश्चित है तब जीव अनित्य होगा, अनित्य जीव की मुक्ति नित्य कैसे हो सकती है?

जीव की उत्पत्ति का कारण भी नहीं। अचेतन प्रकृति से चेतन जीव की उत्पत्ति संभव नहीं। सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान एवं नित्ययुक्त ईश्वर से अवयवी, अल्पज्ञ, अल्पशक्ति एवं बन्धन युक्त जीव की उत्पत्ति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। वास्तव मे अनुच्छित्तिधर्मा अविनाशी जीव की उत्पत्ति संभव ही नहीं।

## मुक्ति की अवधि तथा स्थान

कर्म और ज्ञान के समुच्चय फल से प्राप्त मुक्ति अनित्य है, अनित्य होने से मुक्ति सावधि हुई। सभी मुक्तात्माओं की अवधि एक ही है। इस अवधि को परान्तकाल या महाकल्प कहते है। छत्तीस हजार बार सृष्टि और छत्तीस हजार बार प्रलय को मिलाकर कुल समय चार अरब, बत्तीस करोड़ वर्ष, सृष्टि के इतना ही समय प्रलय का मिलाकर आठ अरब, चौसठ करोड़ वर्ष को छत्तीस हजार से गुणा करने पर इकत्तीस नील, दस खरब, चार अरब, वर्ष ब्रह्मलोक में जीवात्मा के निवास करने की आयु बनती है।

मुक्तात्माओं के लिये स्वर्ग या ब्रह्मलोक की आकाश में कल्पना करना सर्वथा दोषपूर्ण एवं मिथ्या है। वैदिक मान्यतानुसार स्वर्ग स्थान विशेष का द्योतक न होकर स्थिति विशेष का द्योतक है। सर्वव्यापक ईश्वर में मुक्तात्मा कहीं भी अव्याहत गति से स्वेच्छापूर्वक सब लोक, लोकान्तरों में विचरता है।

**"पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि"**

अर्थात–परमात्मा के एक पाद में समस्त मायिक जगत और तीन पाद द्यौ में अमर है।

उपरोक्त वेद मंत्र से स्पष्ट है कि यह प्राकृतिक जगत परिणामी एवं मरणाधर्म वाला है। अप्राकृतिक द्यौ में मात्र ईश्वर है वहीं अमृत है। अतः जीवन्मुक्त जीवात्मा द्यौ लोक में जाता है। वेदों में द्यावापृथिवी रूपी इस ब्रह्माण्ड के नीचे के भाग को पृथिवी–लोक, मध्यभाग को अन्तरिक्ष और ऊपर के भाग को द्यौ लोक कहते है। द्यौ लोक का देवता सूर्य है। इसलिये उपनिषद में कहा है–**"सूर्य द्वारेण ते विरजा प्रयान्ति"** अर्थात

जीवन्मुक्त पुरूष सूर्यद्वार से ही मोक्षधाम को जाते है। इसका तात्पर्य यही है कि सूर्य ही मोक्षधाम का द्वार है और इसका पृष्ठ भाग ही स्वर्ग और ब्रह्मलोक है। किन्तु यह वैदिक स्वर्ग पुराणों में वर्णित स्वर्ग नहीं जहां के देवता सदा राक्षसों से पीड़ित रहते हैं। वैदिक स्वर्ग में जीवन्मुक्त उत्तम कर्मों को करता हुआ ब्रह्मलोक में सब कामनाओं को प्राप्त होकर आनन्द करता है।

## स्वर्ग नरक की व्याख्या

दु:खों से मुक्ति और सुखों की प्राप्ति का नाम ही स्वर्ग है। ऋषि का यह मन्तव्य धार्मिक जगत को एक अद्भुत और सर्वथा नवीन देन है।

प्राय: सब धर्म स्वर्ग और नरक को स्थान विशेष मानते हैं उनका विश्वास है कि स्वर्ग में अपार सुख एवं ऐश्वर्य भोग के साधन उपलब्ध होते है। और नरक में घोर कष्ट और यातनायें दी जाती हैं। स्वर्ग नरक की यह कल्पना इतनी पुरानी और कपोल कल्पित है कि आकाश और पाताल की गहराइयों के रहस्य को खोजने में समर्थ तथा चन्द्रलोक की यात्रा करने वाला वैज्ञानिक युग का मानव इसे स्वीकार नहीं करता। इसलिये ऐसे स्वर्ग का न तो उसे आकर्षण है, न नरक का भय।

स्थान विशेष नहीं किन्तु स्थिति विशेष की ऋषि का मन्तव्य सर्वथा तर्क-सम्मत है क्योंकि स्वर्ग का सम्बन्ध संसार के शारीरिक सुखों से न होकर आत्मा के उस परमानंद से है जो संसार के समस्त सुख व वैभव से अधिक आनन्द दायक है।

**"जो विशेष सुख और सुख की सामग्री का जीव को प्राप्त होना है वह स्वर्ग कहाता है इसके विपरित विशेष दु:ख व दु:ख की सामग्री का प्राप्त होना नरक है।"** (आर्य्योद्देश्य रत्नमाला)

## मुक्ति का प्रयोजन

सभी मनुष्य जीवन में सुख चाहते है दु:ख कोई नही चाहता। सुख प्राप्ति को ही अपने जीवन का लक्ष्य मान भौतिक साधनों को साधने में लगा है। यही सुख की तलाश अन्त में उसके लिए दु:ख का कारण बनती है। दु:ख क्या है पराधीनता, जन्म मरण के बंधन में पड़ना, जिससे पीड़ा हो कामनाओं की पूर्ति न होना आदि दु:ख है, दु:खों का मूल कारण क्लेश है।

दु:ख़ तीन प्रकार का है आध्यामिक दु:ख—शरीर की आन्तरिक विषमता व विकारों द्वारा प्राप्त दु:ख, आध्यामिक दु:ख है, मानसिक और शारीरिक दु:ख इसके भेद है। आधिभौतिक दु:ख—दूसरे प्राणियों द्वारा प्राप्त दु:ख है। आधिदैविक दु:ख-दैविक आपदाओं द्वारा प्राप्त दु:ख। इन तीनों दु:खों से छूटने का नाम मोक्ष

है। लेकिन दुःखों से छूटने को भी मोक्ष नहीं कहेंगे। क्योंकि शरीर के छूटने अर्थात् मृत्यु भी मोक्ष नहीं।

प्रगाढ़ निद्रा या सुषुप्ति में दुःखों का तिरोभाव होता है, अत्यन्त अभाव नहीं होता। मोक्ष में दुःख के अभाव के साथ सुख का भाव विद्यमान रहता है। दुःख की अत्यन्त निवृत्ति बिना सुख की प्राप्ति के संभव नहीं।

जीव मनुष्य योनि में ही उन साधनों का अनुष्ठान करने में समर्थ हो पाता है। जिससे परमानन्द की प्राप्ति होती है।

"दुःख जन्म प्रवृत्ति दोष मिथ्या ज्ञान मिथ्याज्ञानम्।
उत्तरोत्तर पाये तदनन्तरापायादपवर्गः" (न्याय दर्शन १/१/२)

अर्थात-दुःख के कारण को ढूढकर तथा उन कारणों को दग्धबीज करने से ही दुःखों से निवृत्ति मिल सकती है।

## मोक्ष का कारण

"सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयँ् सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते।" (यजु०४०/११)

अर्थात-कार्यरूप सृष्टि व उसके गुण-कर्म-स्वभाव तथा कारणरूप जगत इन दोनों को जानने वाले मृत्यु दुःख से पार होकर मोक्ष सुख को प्राप्त होते है।

"अन्धतमःप्रऽविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इवते तमोय उऽविद्यायारताः॥" यजु० ४०/१२

अर्थात-जो प्रकृति विद्या अथवा कर्म की उपासना करते हैं वे घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं। उससे भी अधिक अन्धकार में वे प्रवेश करते हैं जो केवल विद्या अथवा ब्रह्म विद्या में लीन रहते हैं।

उपरोक्त मंत्र मे विद्या और अविद्या का अर्थ स्पष्ट है। विद्या अर्थात ज्ञान, अविद्या अर्थात कर्म, ज्ञान और कर्म को जो मनुष्य साथ-साथ जानता है। वह अविद्या से मृत्यु को पार करके विद्या से मोक्ष को प्राप्त करता है।

सामान्यतः विद्या का अर्थ है ज्ञान। ज्ञान का अर्थ है पदार्थों (ईश्वर, जीव) के गुण-कर्म-स्वभाव को यथावत जानना। **"जिससे ईश्वर से लेकर पृथ्वी पर्यन्त पदार्थों का सत्य विज्ञान होकर, उनसे यथायोग्य उपकार लेना होता है इसका नाम विद्या है।"** (आर्य्योद्देश्य रत्नमाला)

अविद्या का परिभाषिक अर्थ मिथ्याज्ञान है। पदार्थों के गुण-कर्म-स्वभाव को यथावत न जानकर विपरित जानना। **"जो विद्या से विपरित, भ्रम, अन्धकार और अज्ञान रूप है। इसलिये इसको अविद्या कहते हैं।"** मिथ्या ज्ञान बन्धन का कारण है।

अविद्या का यौगिक अर्थ विद्या के अभाव से लिया जाता है लेकिन इस प्रसंग में अविद्या का यह अर्थ सभंव नहीं, क्योंकि अभाव की न तो उपासना हो सकती है न ही मृत्यु को पार पाया जा सकता है। यहां विद्या को मोक्ष प्राप्त करने वाला और अविद्या को मृत्यु से पार करने वाला बताया गया है। अर्थात दोनो को उपयोगी बताकर उनकी स्तुति की बात की है। शास्त्रों में विद्या और कर्म का सहभाव कहा है।

**''तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च''** (वृहद उप० ४/४/२) (निरूक्त १४/७)

अर्थात–यहाँ अविद्या शब्द विद्या से अलग किन्तु विद्या के समान कर्म का ग्रहण होता है। तब विद्या और अविद्या एक दूसरे के विरोधी न होकर पूरक हो जाते हैं।

**'जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ-साथ ही जानता है, वह 'अवद्यिा' अर्थात कर्मोपासना से मृत्यु को तरके 'विद्या' अर्थात ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त करता है। (स० प्र० नवम समु०)**

वेदों में दो विद्या है, एक अपरा विद्या दूसरी परा विद्या। अपरा विद्या से प्रकृति के समस्त पदार्थों के गुणों का ज्ञान होता है। इसके क्षेत्र प्रकृति-विद्या, सृष्टि-विद्या एवं जगत के कारण का अध्ययन है। परा विद्या जिससे सर्वशक्तिमान परब्रह्म की प्राप्ति होती है। इसके क्षेत्र ईश-विद्या, ब्रह्म-विद्या, आत्म-विद्या एवं विद्या है।

**''विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम्।**
**शरीरं ब्रह्म प्राविशहचः समाथो यजुः॥''** (अथर्व० ११/८/२३)

अर्थात–विद्या, अविद्या और जो कुछ भी उपदेश करने योग्य है वक्, ऋक, यजुः, साम और (ब्रह्म) ज्ञानरूप से शरीर में प्रवेश हुआ है।

मंत्रानुसार विद्या अर्थात् आत्मज्ञान जैसा उपदेश करने के योग्य है, उसी प्रकार अविद्या अर्थात सृष्टि विज्ञान भी पढने योग्य है। तथा तीसरा विद्या-अविद्या के सम्बन्ध का ज्ञान भी उपदेश करने के योग्य है। केवल आत्मज्ञान और सृष्टि विज्ञान का ज्ञान वैसा लाभकारी नहीं जैसे दोनों का इकठ्ठा ज्ञान हो सकता है।

सृष्टि विज्ञान से ऐहिक योग क्षेम ठीक चलता है तो आत्मिक ज्ञान, से आत्मिक शक्ति और शांति प्राप्त होती है। मात्र सृष्टि-विज्ञान में ही रत रहे और आत्म ज्ञान में जायेगें ही नहीं तब इस अवस्था में जगत के भोग बहुत अधिक बढ जाने के कारण आत्मिक शांति नहीं होगी, जिससे अधिक से अधिक दुःख प्राप्त होते जायेगें। इसके विपरित आत्म-ज्ञान में ही रत रहे और सृष्टि विज्ञान में नहीं जायेगें, तब भी वे अवनत होगें। क्योंकि ऐहिक और स्थूल शरीर की स्वस्थता का ज्ञान सृष्टि-विद्या के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। अतः दोनों विद्याओं का समन्वय करके यथायोग्य प्रमाण द्वारा

भौतिक-विद्या से ऐहिक सुख और आत्मिक-ज्ञान से अभौतिक आनन्द प्राप्त कर मानव उन्नति के मार्ग पर चलने का अधिकारी होता हैं।

## बन्ध के कारणभूत अविद्या का लक्षण

सांख्य दर्शन में अविद्या से बन्ध माना है। जीव सृष्टि के आदि से प्रलय तक जन्म मरण के बन्धन में आबद्ध रहता है। यह बन्धन मोक्ष से ही छूट सकता है। मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र होने के कारण प्रकृति की ओर प्रवृत हो बन्धन में पड़ता है। ब्रह्म की ओर प्रवृत हो मोक्ष पाता है। जब तक जीव को सत्य ओर असत्य में विवेक नहीं होता, तब तक उसे बन्धन रहता है। इस अविवेक का मूल **'अविद्या'** है अविद्या अर्थात विपरित ज्ञान। ज्ञान के तीन प्रकार है।

मिथ्या ज्ञान-पदार्थों के गुण-कर्म-स्वभाव का विपरीत ज्ञान। चेतन को अचेतन, नित्य को अनित्य मानना।

व्यवहारिक ज्ञान-प्राकृतिक तत्त्वों व उनके संयोग से उत्पन्न धन-सम्पत्ति, जमीन जायदाद तथा भौतिक वस्तुओं का ज्ञान।

पारमार्थिक ज्ञान-परमात्मा और आत्मा के यथार्थ स्वरूप को जानना।

प्रथम दो प्रकार का ज्ञान मनुष्य को इद्रियों का दास बनाते हैं, ऐसे **''मनुष्य खाओ, पीओ ओर मौज करो''** को ही जीवन का परम लक्ष्य मानते है। पुनर्जन्म न मानकर इसी जीवन को अन्तिम जीवन मानते है। तीसरे प्रकार का ज्ञान है जो मानव को धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का बोध कराते है। परिणामस्वरूप जन्म जन्मान्तरों में सुख और आनन्द प्राप्त करते है।

मिथ्या ज्ञान समस्त दोषों की जननी है। इसी ज्ञान के कारण न चाहते हुए भी मनुष्य दुःख भोगता है। मिथ्याज्ञान के निम्न उदाहरण हैं।

## जीव ब्रह्म का प्रतिरूप नहीं।

अद्वैतवाद के अनुसार जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है। विक्षेपक से भिन्न आकार वाली वस्तु का प्रतिबिम्ब अन्य में बनता है। निराकार, सर्वव्यापक पदार्थ का प्रतिबिम्ब संभव नहीं। अतः निराकार ईश्वर का जीव प्रतिरूप नहीं।

ऐसे ही निराकार व सर्वव्यापी आकाश एक द्रव्य है। अतः वह न तो दिखाई दे सकता है, न ही उसका प्रतिबिम्ब ही जल या दर्पण में पड़ सकता है। हमको दिखाई देने वाला आकाश, अग्नि, जल और पृथ्वी के कणों का समूह है।

वैज्ञानिक टिण्डाल ने सर्वप्रथम बताया कि जब सूर्य की किरणें वायु में स्थित सूक्ष्म परमाणुओं से टकराती है, तब उन किरणों का ध्रुवीकरण हो जाता है। उसे ही हम आकाश कहते हैं। इसी का प्रतिबिम्ब जल या दर्पण में दिखाई देता है। सर्वव्यापी,

निराकार, अचेतन आकाश कभी छिन्न-भिन्न नहीं हो सकता। घड़े की दीवारें भी उसके गुणों को तिरोहित नहीं कर सकती। इसी प्रकार अन्तःकरण में स्थित जीवात्मा की स्वतंत्र सत्ता है। ईश्वर व जीव का स्वभाव व्यापक-व्याप्य, सेव्य और सेवक, उपास्य और उपासक का है। जीव में ईश्वर व्यापक होते हुए भी जीव त्रिविध दुखों से सन्तप्त है।

सर्वव्यापक ब्रह्म के प्रकाश से जीवों के अन्तःकरण प्रकाशमान होते तो उनमें ईश्वर के स्वाभाविक गुण सर्वज्ञता दिखाई देती किन्तु ऐसा देखने में नहीं आता। यह कहना कि जीवों की भिन्नता के कारण जीवों में सर्वज्ञता नहीं आती तो ब्रह्म को विघटित मानना होगा।

मोक्ष विषय में भी हम तत्वत्रय की सत्ता को स्वीकारते है। ब्रह्म को यथार्थ सत्ता के रूप में, जीव को दृष्टा के रूप में व प्रकृति को आवरण के रूप में। जीव कर्म करने में स्वतंत्र व फल भोगने में परतंत्र है। परमात्मा की ओर प्रवृत्त जीव की स्वतंत्रता के साथ सुख की वृद्धि होती है। और प्रकृति की ओर प्रवृत्त होने से परतंत्रता के साथ दु:खों की वृद्धि होती है।

## ब्रह्म में अध्यारोप का खण्डन

एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ का आभास अध्यारोप कहाता है। जैसे-मनुष्य को रस्सी में सांप का, रेत में जल का भ्रम होना। यदि रस्सी सांप न होकर रस्सी है अर्थात ज्ञान हमारी कल्पना के अनुरूप है तो ज्ञान सत्य और ज्ञान कल्पना के विपरीत है तो यह मिथ्या ज्ञान है।

सीधी छड़ जल में प्रकाश के विवर्तन के कारण टेड़ी दिखाई देती है। किन्तु स्पर्श आँखों के मिथ्या भ्रम को तोड देता है।

जगत को कल्पना या भ्रान्तिमात्र बताना तर्कसम्मत नहीं। ईश्वर को सृष्टि का उपादानकारण माने या ब्रह्म को ही जगत में परिणित माना जाये दोनों ही अवस्था में ब्रह्म व जगत नित्य है। तब ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या नहीं हो सकता। तात्विक दृष्टि से कार्य में वही गुण होते है जो कारण में होते है। जगत का कारण रूप ब्रह्म सत्य है तो उसका कार्यरूप जगत मिथ्या नहीं हो सकता। अतः ब्रह्म को जीव मानना मिथ्या ज्ञान है।

## आत्मा के निर्लेपत्व का खण्डन

अत्यन्त सूक्ष्म अचेतन मन प्रकृति का विकार है। दृष्टा, कर्ता व भोक्ता होने के लिये चेतना चाहिये। अतः मन ज्ञान के साधन के रूप में है, ज्ञाता के रूप में नहीं। आत्मा की स्वतंत्र सत्ता है। यह चेतना का आश्रय है। आत्मा के अत्यन्त निकट होने के कारण मन व इन्द्रिय में चेतना की चमक उत्पन्न होती है।

अन्त:करण के द्वारा प्राप्त ज्ञान व अनुभव का कर्त्ता आत्मा है। अन्त:करण, इन्द्रिय और मस्तिष्क ज्ञान के साधन है जिनका उपयोग आत्मा करता है। मन व इन्द्रियां संसार के पदार्थों को प्रकाशित तो कर देते हैं पर जान नहीं पाते, जानने की शक्ति जीव के पास है, जिसमें स्वयं का प्रकाश है।

चेतन जीवात्मा ही देहेन्द्रिय और अन्त:करण आदि साधनों के द्वारा कर्त्ता और भोक्ता है अत: अन्त:करण द्वारा ज्ञान और अनुभव करने वाला जीवात्मा ही पाप-पुण्य का कर्त्ता और उनके परिणाम स्वरूप मिलने वाले सुख-दु:ख का भोक्ता हे। ईश्वर उन कर्मों का दृष्टा है।

## पुनर्जन्म

"एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयति। अभि द्रोणान्यासदम॥" (ऋग्वेद ९/३/१)

अर्थात-यह आत्मा नाना प्रकार की क्रीडाएँ करने वाला है। यह अविनश्वर आत्मा पंखों से गति करने वाले पक्षी के समान गति करता है। और नाना प्रकार के शरीररूपी कलशों में आ बैठता है।

जीवात्मा अविनाशी है, शरीर नाशवान है जीवात्मा का मन इन्द्रियादि व साधनों के साथ संयोग का नाम जन्म और शरीर के वियोग का नाम मृत्यु है। जो उत्पन्न हुआ है उसकी मृत्यु और मरे हुए का जन्म निश्चित है। जीव का, शरीर, मन इन्द्रियादि साधनों के ईश्वरीय नियमानुसार संयोग जीवन है। ईश्वरीय व्यवस्था अनुसार एक बार शरीर त्यागने के पश्चात जीवात्मा इस शरीर को प्राप्त नहीं होता, अत: जीवात्मा नये शरीर में प्रवेश करता है। जीवात्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश पुनर्जन्म कहाता है। जीवात्मा जन्म से पूर्व और मृत्यु के पश्चात अव्यक्त ही रहता है। पुनर्जन्म वैदिक धर्म का अकाट्य सिद्धान्त है।

"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युध्रुवं जन्म मृत्यस्य च।" (गीता २/२७)

अर्थात-जिसने जन्म लिया है निश्चय मरना है। जिसने मरना है उसे जन्म लेना है।

जैसे पक्षी अपने पंखों द्वारा वृक्ष की एक शाखा से दूसरे वृक्ष की शाखा पर जा बैठता है। वैसे ही जीवात्मा ज्ञान व कर्मरूपी पंखों की सहायता से उडान भरता हुआ एक देह से दूसरी देह में पहुंच जाता है। शरीर नाशवान है, नित्य जीवात्मा को वैदिक मान्यता के अनुसार पूर्वजन्म में कृत कर्मों के अनुसार ही शरीर प्राप्त होता है।

"न जायते म्रियते वा विपश्चन्नायं कुतश्चिन्न बमूव कश्चित्।
अजो नित्य: शाश्वतोऽयम्पुराणो न हन्यते हर्न्यान शरीर॥"

(गीता २/२०)

भाव–आत्मा तो सदा एक ही बना रहता है परन्तु शरीर बराबर प्रत्येक जन्म में बदलता रहता है। अतः आत्मा को अमर व शरीर को मरणधर्मा कहा है।

जन्म और मृत्यु, दिन और रात के समान है। दिनभर परिश्रम के पश्चात् थका व्यक्ति रात को सोने के पश्चात् सुबह उठने पर अपने आप को तरोताजा महसूस करता है उसी प्रकार जीवनरूपी संध्या में जीवात्मा का स्थूल शरीर कर्म करने में असमर्थ होता है या दुर्घटना या रोग अवस्था में यह शरीर क्षीण हो जाता है। जीवात्मा उस शरीर में रहने योग्य नहीं रहता तब मृत्युरूपी रात्रि में आराम पाकर जीवात्मा नये जन्म में नये उत्साह, स्फूर्ति, शक्ति व सामर्थ्य के साथ नवजीवन प्रारम्भ करता है।

**"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि ग्रहणाति नरोऽपराणि।**
**यथा शरीराणि विहाय जीर्णानि अन्यानि संयाति नवानि देही॥"** (गीता २/२२)

अर्थात–जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्र त्यागकर नये वस्त्र धारण करता है उसी प्रकार जीवात्मा पुराना शरीर त्यागकर नया शरीर धारण करता है।

इस संसार में कोई पूर्ण है तो कोई लूला–लगड़ा, कोई अन्धा तो कोई काना है, कोई सुखी है तो कोई दुःखी, कोई अमीर है तो कोई गरीब, कोई चतुर है तो कोई मूर्ख। इन विषमताओं को देखकर हम सोचते है कि ऐसा क्यों? कारण स्पष्ट है कि पूर्व जन्मों के कर्मानुसार ही संसार में यह विविधता दिखाई देती है। पुर्वकृत जन्मों का कर्म फल भोगने के लिये जीवात्मा बार–बार जन्म लेता है। न्यायकारी ईश्वर किसी भी जीव के साथ अन्याय नहीं करता, सबको यथायोग्य कर्मों का फल देता है।

वैदिक जीवन दर्शन में मृत्यु का अस्तित्त्व ही नहीं है। शरीर और आत्मा दोनों ही पृथक तत्त्व है। शरीर भौतिक तो आत्मा अभौतिक है। आत्मा नित्य व शाश्वत है। शरीर की मृत्यु होती है यह लोकोचार की बात है। वैज्ञानिक एवं दार्शनिक तथ्य तो यही है कि शरीर भी नहीं मरता है। विज्ञान के संरक्षण के नियमानुसार पदार्थ और ऊर्जा नष्ट नहीं होते, उनका रूपान्तर होता है। अतः शरीर के रूपान्तर का नाम **'मृत्यु'** और आत्मा के रूपान्तर का नाम **'पुनर्जन्म'** है। शरीर प्रकृति के पंचभूतों पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश आदि से बना है, शरीर की मृत्यु के पश्चात वह इन्हीं पंचभूतों में विलीन हो जाता है।

पुनर्जन्म का वैदिक सिद्धान्त इतना युक्तियुक्त है कि संसार का कोई भी विद्वान, दार्शनिक, कवि, वैज्ञानिक इसे अस्वीकार नहीं कर सकता।

## पूर्व जन्म नहीं मानने से हानि

जीवात्मा का जन्म प्रथम व अन्तिम मानने से जीवन के प्रति लगाव नहीं होगा, तब व्यक्ति **'खाओ, पीओ और ऐश करो'** के सिद्धान्त को अपनाने से नैतिक मूल्यों

की हानि होगी। अल्पज्ञ जीवात्मा से जाने-अनजाने अनेक गलतियाँ होती है, पुनर्जन्म नहीं मानने से उसे सुधारने का अवसर जीवात्मा को नहीं मिलेगा। पुनर्जन्म नहीं मानने से '**अकृताभ्यागम**' अर्थात बिना कर्म किये कर्मफल की प्राप्ति और '**कृतहानि**' अर्थात किये हुए कर्म का फल नहीं मिलना आदि दोष लगते है। इससे ईश्वर पर भी नैर्घृण्य और वैषम्य का दोष जाता है। नैर्घृण्य अर्थात बिना अपराध के किसी को दण्ड देना, वैषम्य अर्थात पक्षपात, न्यायकारी ईश्वर सबको यथायोग्य कर्मानुसार कर्मफल प्रदान करते है।

मोक्ष प्राप्ति मनुष्य जीवन का महान लक्ष्य है। जिसे एक जन्म में प्राप्त करना असंभव है। अनेक जन्मों के अथक प्रयास से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

"**अनेक जन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।**" (गीता ६/४५)

अर्थात-जन्म-जन्मान्तर की साधना के बाद मोक्ष की प्राप्ति होती है।

## पुनर्जन्म की सिद्धि में हेतु

वृक्षों की शाखा और पत्तों को बार-बार काटने के पश्चात् भी वृक्ष पुष्पित व पल्लवित होता रहता है, जब तक उसका मूल बना रहता है। इसी प्रकार जब तक विवेक ज्ञान द्वारा क्लेशों का नाश नहीं होता तब तक कर्मफल भोगने के लिये जीव बार-बार जन्म लेता है। क्योंकि कर्म ही शरीर की उत्पत्ति का कारण है।

एक ही माता-पिता की संतानों में जिन्हे समान सुविधा तथा परिवेश मिला है, सामर्थ्य भेद के कारण एक कुशाग्र बुद्धि का दूसरा मूढ़ देखने को मिलता है, संसार में कुछ बच्चे शुरू से ही शांतिप्रिय, कुछ बुद्धिमान, कुछ मूढ़, कुछ संगीत, गणित या विशेष भाषा में विशेष प्रवीणता रखते पाये गये है यद्यपि जन्म के पश्चात् उन्होंने कोई ज्ञान प्राप्त नहीं किया है। इसका कारण है कि पूर्वजन्म की अभ्यस्त बुद्धि ही पुनर्जन्म में प्रतिभा बन जाती है।

पुनर्जन्म की आहार-अभ्यास की स्मृति के कारण नवजात शिशु स्तनपान करता है और क्षुधापूर्ति के पश्चात् माता के स्तन से पृथक हो जाता है। पूर्वजन्म की स्मृति के कारण ही नवजात शिशु कभी मुस्कराता है, कभी रोता है, कभी भयभीत तो कभी शोकग्रस्त दिखाई देता है।

कृमि से लेकर मनुष्य तक सभी मृत्यु से भयभीत रहते है तथा न मरने की इच्छा रखते है कारण है पुर्वजन्म में मृत्यु को देखा है।

अपवाद स्वरूप कुछ को ५ से ७ वर्ष की उम्र तक पुर्वजन्म की स्मृति बनी रहती है जिनको हम अखबार में पढते है सुनते है उनके द्वारा दी गई जानकारी की सत्यता परीक्षण पर खरी उतरी जिससे पुनर्जन्म के सिद्धान्त को बल मिला है।

# पूर्वजन्म की विस्मृति के कारण

विपक्षी प्रश्न करते है कि जब पुनर्जन्म निश्चित है तो पूर्वजन्मों की स्मृति क्यों नहीं रहती ? किसी वस्तु के ज्ञान का भाव उसके अस्तित्व को सिद्ध करता है लेकिन विस्मृति भी किसी के अभाव का प्रमाण नहीं है।

ईश्वरीय व्यवस्थानुसार कुछ जीवात्माएँ देहान्तर प्राप्ति शीघ्र कर लेती हैं ऐसे बालकों में पूर्वजन्म की स्मृति बनी रहती है, आयु वृद्धि के साथ पूर्वजन्म की स्मृति क्षीण होती जाती है। जिन जीवात्माओं को देहान्तर प्राप्ति में समय लगता है उनके पूर्वजन्म के संस्कार निर्बल पड़ जाते हैं, जिससे उन्हें पूर्वजन्म का स्मरण नहीं रहता।

अन्तःकरण में अनेक जन्मों के संस्कार अंकित होते हैं। उपर्युक्त उद्‍बोधक के अभाव में वे संस्कार विस्मृत हो जाते हैं, जिन संस्कारों के उद्‍बोधक विद्यमान रहते हैं उन्हीं का स्मरण रहता है वर्तमान जीवन में भी उद्‍बोधक के अभाव में कुछ काल पूर्व की अनेक घटनाओं का स्मरण नहीं रहता है।

जीवात्मा में स्वाभाविक और नैमित्तिक ज्ञान विद्यमान रहता है। स्वाभाविक ज्ञान **'मै हूँ'** सदा बना रहता है। लेकिन नैमित्तिक ज्ञान देश, काल व वस्तु का जैसा ज्ञानेन्द्रियों से संबंध रहता है, उनका संयोग हटते ही परिवर्तित हो जाता है या विस्मृत हो जाता है। यह आठ प्रकार का होता है, प्रत्यक्ष ज्ञान का क्षेत्र अतिपरिमित एवं अनुमान क्षेत्र का ज्ञान विस्तृत और व्यापक होता है। मन अपने स्वाभावानुसार सन्निहित पदार्थ से रागद्वेष रखता है, सानिघ्य हटते ही उनका स्मरण नहीं रहता।

**''युगपद ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिंगम।''** (न्याय० १/१/९६)

अर्थात-एक समय में आत्मा में एक से अधिक ज्ञान का स्फुरण नहीं होता।

जैसे अशुद्ध जल में पदार्थ की छाया दिखाई नहीं देती वैसे ही मन के त्रिदोष, इष्णाओं तथा योगाभ्यास के अभाव में पूर्वजन्म का ज्ञान नहीं रहता। योगी या मुक्तात्माओं जिनका जन्म अमैथुनी सृष्टि में हुआ है, अपनी पवित्रता, स्थिरता तथा ज्ञानोन्नति के कारण ही उनको पूर्वजन्मों का स्मरण रहता है।

**''बहूनि में व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।**
**तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तपः ॥''** (गीता ४/५ )

अर्थात-हे अर्जुन तेरे मेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं उन सबको तू नहीं जानता किन्तु मैं जानता हूँ।

# पूर्वजन्मों की विस्मृति में ही हित

विस्मृति के कारण ही मानव सुखी है अन्यथा अच्छे दिनों को याद कर रोता रहता और दुःखद योनियों ओर घटनाओं को याद कर अपने जीवन में विष घोल लेता।

पुराने शत्रुओं से बदला लेने के सदा अवसर खोजता या अपने सुख सुविधाओं के साधनों को ललचाई दृष्टि से देखता और उनको पाने की कोशिश करता। अपने प्रियजनों को छोड़ना ही न चाहता। निश्चित ही तब अधिकांशः लोगों का जीवन नरक बन जाता। इस प्रकार **'मोक्ष प्राप्ति'** के साधनोपायों में न लगकर दुर्लभ मानव जीवन यूं ही व्यर्थ गंवा देता। अतः ईश्वर ने पुरानी बातों को स्वतः भूल जाने की व्यवस्था करके जीवों पर अति उपकार किया है। पूर्वजन्म की तो बात ही छोड़िये क्या हम इस जन्म में अपने प्रियजनों के वियोग में, हानि में, स्वजनों की मृत्यु के दुःख को समय के साथ भूलकर जीवन में सामंजस्य नहीं बना लेते? और दुःखों से उबर नहीं जाते?

## योनियों के प्रकार

मनुष्य जिस प्रकार दृष्टिमान स्थूल शरीर का अभिमानी है, उसका मृत्यु के पश्चात पुनः शरीर प्राप्त करना जीवात्मा के जन्म-जन्मान्तरों के कृत कर्मों के अधीन है। सृष्टि कर्त्ता के अटूट नियमों तथा व्यवस्थाओं में बद्ध जीवात्मा कृत कर्मों के कर्मफल भोगने हेतु मनुष्य, पक्षी-पशु, कीट, पंतग आदि अनेकों शरीरों को प्राप्त होता है।

**"आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वंपूषि कृणुषे पुरूणि।"** (अथर्व ५/१/२ )

अर्थात-परमात्मा सबके पूर्वकृत कर्मों को जानता है। तत् कर्म-फल के अनुरूप अनेक शरीरों की रचना करता है।

प्रत्येक क्षण कर्म करते रहना मनुंष्य का नैसर्गिक गुण तथा स्वभाव है। प्राणी कर्म से बंधा हुआ है। मनुष्य कोई ना कोई कर्म करता ही रहता है। और कुछ नहीं तो उसके मन में अनेक विचार रूपी कर्म चलते ही रहते हैं।

**"न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्"** (गीता ३/५)

अर्थात-बिना कर्म किये कोई मनुष्य पलभर भी नहीं रह सकता और बिना भोगे कर्म का क्षय नहीं होता।

महर्षि कर्म की परिभाषा कुछ इस तरह देते है **"जो मन इन्द्रिय और शरीर में जीव चेष्ठा विशेष करता है सो कर्म है"** (आर्य्योद्देश्यरत्नमाला)

आध्यात्मिक दृष्टि से कर्म के तीन भेद हैं। **शुभ कर्म**-जो कर्म वेदानुसार तथा निष्काम भावना से किया जाये जिससे स्वयं की उन्नति के साथ संसार के प्रत्येक जीव की उन्नति हो को शुभ कर्म या पुण्य कर्म कहते हैं।

**अकर्म**-जो कर्म, कर्मकर्त्ता को लाभ न पहुँचाये जिसका फल भी अकारथ ही जावे अकर्म कहलाते हैं। जैसे मूर्ति पूजा, अपात्र को दान आदि।

**दुष्कर्म**-जिन कृत कर्मों का प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्वयं को या अन्य प्राणियों को किसी भी प्रकार कष्ट पहुँचावे दुष्कर्म या पाप कहलाते हैं।

**कर्मयोनि**-जिन आत्माओं पर पूर्वजन्मों में कृत शुभ कर्मों के संस्कार सूक्ष्म शरीर पर बीज रूप में अत्यधिक मात्रा में तथा अशुभ कर्मों के संस्कार अत्यधिक न्यून मात्रा में स्थिर होते हैं, वे आत्माऐं पुनर्जन्म में पुनः मनुष्य जन्म प्राप्त करती हैं। ऐसे मनुष्य ज्ञानयोग, कर्मयोग तथा भक्तियोग के द्वारा निष्काम कर्मों का अनुष्ठान कर मुक्ति को प्राप्त होते हैं। अयोनिज के कारण ये आत्माऐं गर्भावासादि दुःख नहीं सहती। श्रीराम, कृष्ण, महर्षि दयानन्द, महर्षि कपिल इस योनि के उदाहरण हैं।

**भोग योनि**-जिन आत्माओं पर अत्यधिक मात्रा में दुष्कर्मों के बीज स्थिर होते हैं,। वे इस योनि को प्राप्त होते हैं। जो स्वाभाविक जन्मजात ज्ञान से युक्त होने के कारण मात्र भोग योनि के माध्यम हैं। स्वतंत्र कर्म करने में असमर्थ होते हैं। जैसे पशु,वनस्पति।

**उभय योनि**-जिन आत्माओं पर शुभाशुभ कर्मों के समान बीज स्थिर होते हैं, वे इस योनि को प्राप्त होते हैं। इस योनि में क्रियामाण अर्थात जो कर्म किये जा रहे हैं, संचित कर्म अर्थात पूर्वकृत कर्म जिनका भोग नहीं मिला, प्रारब्ध अर्थात पूर्वकृत कर्मों के फलस्वरूप सुख-दुःख की प्राप्ति अर्थात भाग्य का निष्पादन संभव है। इस योनि में जीव अभ्युदय तथा निःश्रेयस दोनों प्रकार की सिद्धी कर सकता है। इस योनि में मानव कर्म करने में स्वतंत्र लेकिन कर्मफल ईश्वराधीन होते हैं। मोक्ष प्राप्ति में साधन रूप होने से इसे सर्वोत्कृष्ट योनि माना गया है।

## योनि नियति व्यवस्था

मनुष्य कृत शुभाशुभ कर्मों के संस्कारों के अनुरूप ही उनके स्वभाव तथा अन्तःकरण की इच्छाओं का निर्माण करते हैं। मृत्यु के समय जैसी वासना होती है, उसी के अनुसार नवीन शरीर प्राप्त होता है।

उत्तम योनि प्राप्त करने के लिए मृत्यु समय की अच्छी वासना ही जरूरी नहीं उसके लिये जीवनभर अपने अन्तःकरण से दुष्कर्मों को पृथक कर शुभकर्मों का ही अनुष्ठान करते रहने से अन्तःकरण का स्वभाव पवित्र और उत्तम होता है तभी अन्तकाल की इच्छाऐं पवित्र होंगी, जिससे इच्छानुसार योनि की प्राप्ति होती है, जीवनभर अशुभ कर्म करे और अन्त समय में उत्तम वासनाओं की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

**"यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः**
**सहात्मना यथा संकल्पितं लोकं नयति॥"** (प्रश्नोपनिषद प्र० ३/१०)

मृत्यु के समय पूर्वकर्मानुसार जिसमें चित्त होता है उन संस्कारों के साथ जीवात्मा इन्द्रियों के साथ प्राणों को ग्रहण करके, प्राण वायु तेज से युक्त हुआ, आत्मा के साथ उसको अपने अन्तःकरण की वासना वाले शरीर को ले जाता है।

# देहान्तर प्राप्ति कैसे और कब

बृहदारण्यक उपनिषद के ऋषि लिखते हैं कि जैसे जौंक तिनके के अन्तिम भाग में पहुँचकर जब तक दूसरे तिनके पर पैर नहीं जमा लेती तब तक पिछले तिनके को नहीं छोड़ती है। ठीक वैसे ही जीवात्मा शरीर को उसी समय छोड़ती है, जब वह दूसरे शरीर का आश्रय ग्रहण कर लेती है। परन्तु विभिन्न अवस्था में विभिन्न समय देहान्तर प्राप्ति में लगता है।

जिन आत्माओं पर कृत दुष्कर्मों के कारण अति नीच योनियों में जाना हो वे जीवात्मायें शरीर छोड़ते ही कीट, पंतग, कीड़े, मकोड़े की योनि में चली जाती हैं।

जिन आत्माओं के शुभाशुभ कर्म सम्मिलित होते हैं ऐसी जीवात्मायें मृत्यु के बाद शरीर से पलायन कर, उदान प्राणों के द्वारा आकाश में जा मेघ मण्डलों तक पहुंच उनसे संयुक्त हो वर्षा के जल के साथ पृथ्वी पर आ अन्न, फल, मेवा औषधियों तथा जल आदि के माध्यम से माता-पिता के रज-वीर्य में जा गर्भ में प्रवेश कर, गर्भ धारण कर स्थूल शरीर प्राप्त कर संसार में पुनः देह प्राप्त करती हैं। जैसे मनुष्य, पशु-पक्षी आदि की योनियां।

जिन जीवात्माओं के मात्र शुभ कर्मों की प्रबलता व प्रभाव अत्यन्त शक्तिशाली होते हैं वे जीवात्मायें चन्द्रलोक में प्रलयकाल तक स्थिर हो जाती हैं और नवीन सृष्टि रचना में अमैथुनी संतान के रूप में शरीर प्राप्त करती हैं। जिन जीवात्माओं के शुभ कर्म मर्यादित समय के होते हैं वे अवधि समाप्ति पर माता के गर्भ में विभिन्न योनियों को प्राप्त करती हैं।

जीवात्मा को देहान्तर प्राप्ति कराने वाला ईश्वर है। क्योंकि अचेतन कर्म स्वयं फल नहीं दे सकते, अल्पज्ञ जीवात्मा कर्मफल का उचित निर्णय नहीं कर सकता, फिर जीव स्वेच्छा से श्रेष्ठ योनियों में ही जाना चाहेगा निकृष्ठ योनियों में नहीं। अतः न्यायकारी ईश्वर ही जीव को उनके कर्मानुसार दण्ड भोगने व सुधार के लिये विभिन्न योनियां प्रदान करता है। स्पष्ट है कि देहान्तर प्राप्ति स्वकृत कर्मों पर ही निर्भर है।

"असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्।
ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृळया नः स्वस्ति॥"

(ऋग्० १०/५९/६)

यहाँ पुनर्जन्म के प्रसंग में परमेश्वर को असुनीते (प्राणों को ले जाने वाला) नाम से पुकार कर उससे उत्तम जन्म और भोगादि के साधन प्रदान करने की प्रार्थना की गई है।

## पाप-पुण्य के कारण विभिन्न योनियाँ

मनुष्य के दैनिक कार्य-कलापों में सत्-रज-तम गुणों का महत्त्वपूर्ण तथा प्रभावी स्थान है। इन्हीं गुणों के वशीभूत हो मनुष्य शुभाशुभ कर्म करने में प्रवृत होते है। परिणामस्वरूप शुभ कर्म कर पुण्य और दुष्कर्म कर पापों के बीज सूक्ष्म शरीर पर अंकित कर स्वयं का भाग्य निर्माता बनता है। सत-रज-तम इन गुणों की अलग-अलग श्रेणियां हैं।

(1) निकृष्ट (2) मध्यम (3) उत्तम

मनुस्मृति के अध्याय 12 में पाप पुण्य की बहुत प्रकार की गति का वर्णन है।

## तमोगुण के कारण प्राप्त योनियाँ

निकृष्ट श्रेणी से प्राप्त योनियां-स्थावर, कृमि, कीट, मछली, सांप, कुत्ता, कछुआ, हिरण आदि योनियां तमोगुण की निकृष्ट योनियां हैं।

मध्यम योनि से प्राप्त योनियां-हाथी, घोड़ा, सुअर, म्लेच्छ, सिंह, बाघ, शुद्र आदि योनियां तमोगुण की मध्यम श्रेणियां हैं।

उत्तम श्रेणी से प्राप्त योनियां-छली, कपटी, मनुष्य, राक्षस, पिशाच, तमोगुण की उत्तम श्रेणी हैं।

## रजोगुण के कारण प्राप्त योनियाँ

निकृष्ट श्रेणी से प्राप्त योनियां-झल्ल, मल्ल, नट, शस्त्र से जीविका चलाने वाले मनुष्य, जुआरी तथा शराबी रजोगुण की निकृष्ट योनियां हैं।

मध्यम श्रेणी से प्राप्त योनियां-राजा तथा क्षत्रिय राज पुरोहित, झगड़ालू आदि रजोगुण की मध्यम योनियां हैं।

उत्तम श्रेणी से प्राप्त योनियां-गन्धर्व, गुह्यका, अप्सरा, शिल्पकार रजोगुण की उत्तम श्रेणी हैं।

## सत्व गुण से प्राप्त योनियाँ

निकृष्ट श्रेणी से प्राप्त योनियां-तपस्वी, संयमी, यति, वेदपाठी, ज्योतिषी, दैत्य आदि।

मध्यम श्रेणी से प्राप्त योनियां-यज्ञकर्त्ता, ऋषि, देवता, वेद ज्ञाता, ज्योतिषी पत्रा बनाने वाले वत्सर साधक आदि।

उत्तम श्रेणी से प्राप्त योनियां-चारो वेदों का ज्ञाता, सृष्टि उत्पन्न करने वाला ईश्वरीय कर्म महान अव्यक्त, निराकार परमात्मा सतोगुण की उत्तम श्रेणी है।

## कर्म-फल भोग-भोगना अनिवार्य

अनेक धर्मावलम्बियों में यह भ्रांति व्याप्त है कि पाप क्षम्य है। ईसाई पादरी कहते है कि ईशु के सम्मुख अपने पाप स्वीकारोक्ति करने से ईश्वर उसके पाप क्षमा कर

देते हैं। मुसलमान मतावलम्बी कहते हैं कि तौबा करने से पाप धुल जाते हैं। किन्तु हिन्दु समाज में यह बीमारी अत्यधिक व्याप्त है। उनके अनुसार नदी विशेष में स्नान करने से, स्थान विशेष की यात्रा करने से, पूजा-पाठ से पाप से मुक्ति मिल जाती है।

**वेद कहता है-"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्"**

अर्थात-जो भी शुभ-अशुभ कर्म किये जाते है उनका अच्छा या बुरा फल अवश्य भोगना पड़ेगा और उससे कोई किसी प्रकार नहीं बच सकता। आखिर पाप है क्या?-"**जिस काम के करने से भय, लज्जा व शंका हो उसे पाप कहते है।**" (स० प्र० नवम् समु०) चोरी करना, झुठ बोलना, अन्य प्राणी को कष्ट देना, राष्ट्र से द्रोह करना पाप की श्रेणी में आते है। व्यक्ति लोभ-लालच या अभाव में पाप करता है। सोचें यदि पापी को पाप की सजा नहीं मिले तो संसार में पुण्यात्माओं का जीना दूभर हो जाय। अतः पाप क्षम्य नहीं, हां इतना अवश्य है कि कभी-कभी छोटे पापों का फल किसी बड़े पुण्य-कर्म के समक्ष गौण हो जाता है और उसका फल कुछ समय के लिये स्थगित हो जाता है। न्यायकारी ईश्वर किसी के पापों को क्षमा नहीं करता। वह सब को कर्मानुसार यथायोग्य फल प्रदान करता है।

**"कृत्वा पाप हि संतप्य तस्मात् पापात् प्रभुच्यतु।**
**नैवं कुर्या पुनर्सित निवृत्या पूयते तु सः।"**

(मनुस्मृति ११/२३०)

अर्थात-कोई कितना भी पश्चाताप करे तो भी कृत कर्मों को तो भोगना ही पड़ता है। पश्चाताप से पाप का क्षय नहीं होता, हां आगे पाप करना बन्द हो जाते हैं।

## मुक्ति के साधन

मोक्ष मानव जीवन की ऐसी उपलब्धि है जो उसे जन्म-जन्मान्तर के अथक प्रयत्न से ही प्राप्त हो सकती है। अनेक जन्मों के दुष्कर्मों (पापों) को ज्ञान रूपी अग्नि द्वारा नाश कर ज्ञान कर्म उपासना द्वारा इसे प्राप्त करना होता है। लेकिन विवेकहीन व्यक्तियों ने इसके साथ खिलवाड़ किया है। अथक परिश्रम व परान्तकाल तक प्राप्त मुक्ति को अज्ञानी लोगों ने नदी विशेष मे स्नान करने, स्नान करने न जा सके तो नदी नाम मात्र से ही, नाम विशेष का उच्चारण करने या माला फेरने से, मूर्ति दर्शन से, मरणोपरान्त गऊ दान से, काशी में मृत्यु होने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। जो पदार्थ इतनी सरलता से प्राप्त हो उसका महत्त्व क्या? यह अज्ञान व अविद्या के कारण है। हरि नाम के स्मरण में महर्षि पंतजलि कहते हैं कि

**"पहले अपने उपास्य के सर्वगुण सम्पन्न मुख्य नाम को जानो, फिर जप करो, जप भी उल्टा सीधा नहीं, अर्थ का चिन्तन करते हुए करो।"**

योग दर्शनकार ऋषि तो अर्थ चिन्तन के साथ-साथ चित्त की वृत्तियों का निरोध भी जप के लिये आवश्यक मानते हैं। उपासना से पूर्व ज्ञान (ईश्वर, प्रकृति और जीव) व उसकी प्राप्ति के लिये पुरूषार्थ आवश्यक है। ईश्वर स्थान व काल की दृष्टि से दूर न होकर मात्र ज्ञान की दृष्टि से दूर है। वेद में मुक्ति प्राप्ति का एक ही मार्ग बताया गया है और वह परमेश्वर का ज्ञान है।

**"तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।"** (यजुर्वेद ३१/१८) अर्थात-उस परमेश्वर को जानकर ही मुत्यु को जीत सकते है दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

ईश्वर की उपासना सतत तथा श्रद्धापूर्वक करने से जीव मुक्ति को प्राप्त होता है। मोक्ष प्राप्ति के लिये ज्ञान, कर्म, उपासना, योग एवं धर्म के सम्यक अनुष्ठान की एक सुव्यवस्थित प्रक्रिया है। ऋषि दयानन्द **"ज्ञान, कर्म और उपासना को मुक्ति के लिये आवश्यक और महत्त्वपूर्ण मानते हैं।"**

ईश्वरकृत वेदों के द्वारा अनादि तत्व ईश्वर, जीव और प्रकृति का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर उसको धर्मानुकूल आचरण में लाने से आत्मोन्नति होकर जीव मुक्ति को प्राप्त होता है। इस प्रकार जीव की जब अविद्यादि बन्धन की गांठें खुल जाती हैं तब जीव को मुक्ति प्राप्त होती है।

**"ईश्वर की उपासना से अविद्यादि क्लेश तथा अधर्माचरण आदि दुष्ट कर्मों का क्षय होकर आत्मा के शुभ कर्मों की उन्नति होती है।"** (ऋग्वेद भाष्यभूमिका उपासना विधि)

ऋषि ने मोक्ष के चार साधन बताये हैं।

**विवेक**-तत्वज्ञान के बिना मुक्ति संभव नहीं। वैदिक मतानुसार भौतिक विद्या को जाने बिना आध्यात्मिक विद्या की प्राप्ति नहीं होती। जैसे किले को भेदने के लिए किले की संरचना का ज्ञान परमावश्यक है वैसे ही मुक्ति प्राप्ति के लिये शरीर संरचना का ज्ञान परमावश्यक है।

## पांच कोश

जीवात्मा पांच कोशों से ढका हुआ है। इनकीं पवित्रता पर ही मोक्ष निर्भर है।

**अन्नमय कोश**-दृश्यमान स्थूल शरीर ही अन्नमय कोश है जो त्वचा, मांस, रक्त, मेद, अस्थि, मज्जा, रज, वीर्य से बना समुदाय है। इन समुदायों की पुष्टि अन्न द्वारा होती है। इस कोश की पवित्रता के लिये हितकारी और लाभदायक अन्न की आवश्यकता हैं। गीता में भोजन के तीन भेद सात्विक, राजसिक और तामसिक बताये है। सात्विक भोजन बुद्धि को निर्मल, मन को शांत और शरीर के लिये पुष्टि कारक होता है। बाल, युवा, बुढ़ापा और मृत्यु स्थूल शरीर के रूप है।

शरीर की स्वस्थता के लिये आवश्यक है कि भोजन भूखं लगने पर ही करें साथ ही भूख से कम भोजन करना ही श्रेष्ठकर है। भोजन प्रकृति के अनुकूल और धर्म के अनुकूल हो। अन्न की पवित्रता अर्थात अन्न पाप की कमाई का न हो। मनु महाराज कहते हैं कि पाप के अन्न से अन्तःकरण ही मलिन नहीं होता बल्कि संतान भी पापात्मा होती है।

**प्राणमय कोश**–यह अन्दर का किन्तु बाहरी वायु से सम्बन्ध रखने वाला कोश है। यह प्राण ही जीवन का आधार है। यही प्राण भोजन–रस को बना शरीर के रूधिर में पहुंचाता है, रूधिर परिवहन द्वारा समस्त अंगों तक पहुंचाता है। साथ ही शुद्ध वायु को शरीर में पहुंचाकर अशुद्ध वायु और शरीर के मल को बाहर निकालते हैं। निद्रावस्था में भी प्राणों का कार्य चलता रहता है। इस प्राण द्वारा ही जीवात्मा का शरीर से सम्बन्ध कायम रहता है।

**मनोमय कोश**–इस कोश के द्वारा ही मन, कर्म और ज्ञानेन्द्रियों पर शासन करता है। गीता में मन को बडा चंचल बताया है जो वायु की तरह बेकाबू है। अभ्यास और वैराग्य द्वारा ही इसे नियन्त्रित किया जा सकता है। मन संकल्प विकल्प का उदगम् स्थान है यहीं से अच्छाई और बुराईयों का जन्म होता है। मन के निग्रह से समस्त इन्द्रियों का निग्रह होता है। मन इन दोनों कोशों का स्वामी है, अतः शरीर में इसका स्थान इनसे ऊंचा है।

**विज्ञानमय कोश**–इस कोश का सम्बन्ध बुद्धि से है। मन के संकल्प विकल्प का आधार बुद्धि है। बुद्धि जैसा निश्चय करती है मन भी वैसा ही चिन्तन करता है। बुद्धि की निर्मलता और तीव्रता से मनुष्य महान बनता है। आज संसार में जितनी उन्नति, व विकास दिखाई देता है उसका आधार बुद्धि ही है। बुद्धि से सत्यासत्य का निर्णय होकर मोक्ष की सिद्धि होती है।

**आनन्दमय कोश**–यह कोश आनन्द व प्रीति का केन्द्र है। इस कोश के द्वारा ही जीवात्मा परमात्मा का साक्षात करके परमानन्द को प्राप्त होता है।

## तीन अवस्थाएं

**जागृत अवस्था**–जब मन और इन्द्रियों द्वारा मानव शरीर कार्य करता है तब उसे जागृत अवस्था कहते हैं। इसी अवस्था का संबंध स्थूल शरीर से है।

**स्वप्नावस्था**–इस अवस्था में बाह्य इन्द्रियों का व्यापार बन्द रहता है परन्तु संकल्प विकल्पात्मक मन का व्यापार चलता रहता है। इसका संबंध सूक्ष्म शरीर से है।

**सुषुप्तावस्था**–इस अवस्था में इन्द्रियों और मन संबंधित सभी कार्य बन्द हो जाते हैं। मात्र आत्मा का कार्य अन्दर चलता है इसका संबंध कारण शरीर से है। पांच कोशों और तीन अवस्थाओं के ज्ञान से स्पष्ट है कि जीव इनसे पृथक है।

# तीन शरीर

**स्थूलशरीर**–अचेतन स्थूल शरीर दस इन्द्रियों का समुदाय है। जिनमें इच्छित और अनइच्छित कर्म करने वाले अवयव भी शामिल है। जीवात्मा इसमें रहता हुआ अपनी सम्पूर्ण क्रियायें करता है इसके विकास से शारीरिक उन्नति होती है।

**सूक्ष्मशरीर**–पाँच प्राण (प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान), पाँच इन्द्रियां (आंख, कान, नाक, त्वचा और रसना), पाँच तन्मात्र (शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श) मन और बुद्धि, इन सत्रह तत्वों से युक्त यह सूक्ष्मशरीर है। यह सूक्ष्मशरीर ही आत्मा का आवेष्ठन है जो सर्गकाल से प्रलयकाल तक आत्मा के साथ रहता है। मृत्यु के पश्चात भी जीवात्मा का सूक्ष्मशरीर बना रहता है। यह जीवात्मा का शक्ति समुदाय है इसकी उन्नति से मानसिक उन्नति होती है। सूक्ष्मशरीर में इन्द्रियों की शक्ति है तो स्थूलशरीर में इन्द्रियों की अवयव शक्ति है। शक्ति और अवयव मिलकर क्रियात्मक जगत में कार्य करते हैं। भौतिक और अभौतिक इसके दो भेद हैं।

भौतिक शरीर तन्मात्र के अंशों से बना है। अभौतिक शरीर जीवात्मा का स्वाभाविक गुण–रूप है। इसी के द्वारा मुक्तात्मा मुक्ति का सुख भोगता है।

**कारणशरीर**–सूक्ष्मशरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन अहंकार और बुद्धि इन तेरह करणों की रचना **'अध्यात्मसृष्टि'** कही जाती है। इसका आत्मा के साथ निकटतम सम्पर्क है। सूक्ष्मशरीर में पाँच तन्मात्र की रचना अधिभूत सृष्टि कही जाती है, जो प्रकृति का मूल है। अध्यात्मसृष्टि से अन्तिम रचना बाह्य करणों की है, इन्हीं के द्वारा जीवात्मा बाह्य जगत से सम्बन्ध स्थापित करता है इन करणों का व्यापार जीवात्मा की विद्यमानता का द्योतक है। अतः इन्हें **'लिंग'** कहा जाता है। सूक्ष्मशरीर के तेरह करण आधेय और पाँच तन्मात्र आधारभूत है। अतः प्रथम भाग को लिंग शरीर और द्वितीय भाग को **''कारणशरीर''** कहा जाता है। सूक्ष्मशरीर को करणों की प्रधानता पर लिंग शरीर और तन्मात्र की प्रधानता पर कारणशरीर द्वारा व्यक्त किया जाता है। कारणशरीर में सत्व, रजस, और तमस की साम्यावस्था में इसके उन्नत होने से मनुष्य योगी बनता है। ऋषि ने सुषुप्ति अवस्था को कारणशरीर कहा है। और प्रस्तुत प्रसंग में ऋषि ने कारणशरीर की तीन विशेषता बताई हैं।

**सुषुप्ति अथवा गाढ निद्रा**–समस्त विद्वान स्वीकारते हैं कि इस अवस्था में समस्त करणों का सामान्य व्यापार **'प्राण'** बराबर बना रहता है। किन्तु विशेष व्यापार अर्थात ज्ञानेन्द्रियों का व्यापार बन्द रहता है। तन्मात्र रूप कारण शरीर **'लिंगशरीर'** का मुख्य आधार है। अतः सुषुप्ति अवस्था में बाह्य इन्द्रियों का संबंध **'लिंगशरीर'** से न रहकर अपने आश्रयभूत शरीर से रहता है, यही सुषुप्तिवस्था है। इसी को ऋषि लिखते हैं कि जिसमें सुषुप्ति है ऐसा शरीर **'कारणशरीर'** कहाता है।

**वह प्रकृतिरूप होने से सर्वत्र विभु है**–'**कारणशरीर**' के तन्मात्र प्रकृतिरूप तत्व हैं और यह लिंगशरीर के आधार हैं, इसी कारण से ऋषि ने इसे प्रकृतिरूप कहा है। सूक्ष्मशरीर जीवात्मा का आवेष्ठन है जो सर्गकाल के आदि से प्रलयकाल तक प्रत्येक आत्मा के साथ आबद्ध रहता है। यह सूक्ष्मशरीर मुक्तावस्था में आत्मा से पृथक हो जाता है। शेष आत्मायें प्रलयकाल में सुप्त अवस्था में रहती हैं। जब तक सृष्टि का क्रम प्रारम्भ नहीं होता। यह क्रम पूर्ववत् चलता है। जहां आत्मा वहाँ सूक्ष्मशरीर है। इसी अभिप्राय से ऋषि ने '**कारणशरीर**' रूप में उनको विभु कहा है। इसका अर्थ यह नहीं कि यह शरीर व्यक्तिरूप से सर्वत्र व्यापक है। ऐसी कल्पना भी अशक्य है।

**सब जीवों के लिये एक है**–आत्मा का आवेष्ठन सूक्ष्मशरीर है, जिसकी रचना प्रत्येक के लिये सर्वथा समान हैं। व्यक्तिरूप भेद होते हुए भी इनकी स्थिति और रचना ईश्वर कृत है। स्थूलशरीर की रचना में आत्मा का सहयोग है। किन्तु इसमें नहीं। प्रत्येक जाति के शरीर में अवयव भेद होते हुए भी शरीर प्रायः समान होते है। जिससे वे पहचाने जाते है। सूक्ष्मशरीर में यह भेद अभिलक्षित नहीं होता किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि सब जीवों का व्यक्तिरूप से एकमात्र वहीं शरीर होता है अतः ऋषि ने इसे सब जीवों के लिये एक कहा है।

यह तीन शरीर आत्मा की बन्ध स्थिति के द्योतक है जो '**अविवेक**' के कारण है। संस्कारजन्य शुद्ध स्वरूप से वह मुक्ति का सुख भोगता है।

**तुरीयशरीर**–यह सूक्ष्मशरीर के अभौतिक भेद का ही विवरण मात्र है सूक्ष्मशरीर चाहे '**लिंगशरीर**' हो या कारणशरीर वह भौतिक अथवा प्राकृत है, और आत्मा की बन्ध स्थिति का द्योतक है। ऋषि ने मात्र सूक्ष्मता की साधारण समानता के कारण अभौतिक भेद के रूप में वर्णन किया है। जो वास्तव में मुक्तात्मा की स्थिति है। निश्चय ही आत्मा की बन्ध स्थिति नहीं है। इसी शरीर से आत्मा मोक्ष आनन्द का अनुभव करता है।

## ईश्वर का स्वरूप

प्रमाणों से सिद्ध हैं कि ईश्वर एक सत्तात्मक वस्तु है। **जन्माद्यस्ययतः** (वेदान्त दर्शन १/१/२) अर्थात जिससे इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय होती है वह परमेश्वर है। ईश्वर ही जीव के कर्म का दृष्टा एवं वही पक्षपात रहित प्रत्येक जीव को यथायोग्य कर्मों का फल प्रदाता है।

चेतन ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी,

अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। ईश्वर के गुणों के अनुसार उसके अनेक नाम हो सकते है जैसे–ओ३म, जल, दिव्य, पुरूष, माता, पिता, गुरू, वायु, विष्णु, विश्व, शक्ति, अग्नि आदि। ईश्वर एक है, दो या तीन नहीं।

## जीव का स्वरूप

ईश्वर के समान जीव भी चेतन व सत्तात्मक वस्तु है। जीवात्मा न स्थान घेरता है न इसमें भार है लेकिन क्रिया व गुण के कारण वह पदार्थ है। जीवात्मा में नैमित्तिक गुण हैं जो देश, काल व परिस्थिति के अनुसार बदलता रहता है। और स्वाभाविक गुण अर्थात जीवात्मा को अपने अस्तित्व का ज्ञान सदा रहता है। जीवात्मा कर्मयोनि में ईश्वर प्रदत्त साधनों के द्वारा ही कर्म करने में समर्थ होता है तब वह सन्तानोत्पत्ति करना तथा उनका पालन, जीविकोपार्जन हेतु अच्छे व बुरे कर्म करता हैं। जीवात्मा प्राणियों के अचेतन शरीर में निवास करता है।

जीवात्मा नित्य, अनादि, काल की दृष्टि से अनन्त, निर्विकार, अजर अमर, निराकार, अल्पज्ञ, एकेदेशी, व अल्पशक्तिमान है। जीवात्मा का कोई लिंग नहीं। आकार से वह सूक्ष्म अणुरूप है। तभी वह अत्यन्त सूक्ष्म जीव और अत्यन्त विशालकाय हाथी को भी चला सकता है। आत्मा अभौतिक हैं। जीवात्मा अनेक हैं। जीव इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, प्रयत्न और ज्ञान आदि गुण से युक्त है।

ईश्वर व जीव में स्वामी–सेवक, उपास्य–उपासक, व्याप्य–व्यापक, पिता–पुत्र का सम्बन्ध है।

## प्रकृति का स्वरूप

यह समस्त प्रकृति त्रिगुणात्मक (सत्–रज–तम की साम्यावस्थारूप) है। इस अचेतन दृश्य प्रकृति का प्रयोजन पुरूष को भोग व अपवर्ग प्राप्त कराना है। प्रकृति संसार का उपादान कारण है। ईश्वर इसी से कार्य जगत का निर्माण करता है। प्रलयावस्था में प्रकृति अपने कारण रूप में विलीन हो जाती है।

## मुक्ति का दूसरा साधन वैराग्य

वैराग्य का अर्थ है विराग अथवा विरक्त होने का भाव। राग व द्वेषता साथ–साथ पनपते है, और विवेक को हर लेते है। दुःख का कारण राग ही है। जिससे वह मुक्त नहीं होता। विवेक का अर्थ श्रुति सम्मत है। विवेक से निष्ठा और निष्ठा से परहित का जन्म होता है।

प्रकृति से ईश्वर पर्यन्त पदार्थों के गुण–कर्म–स्वभाव को जानकर ईश्वर आज्ञा का पालन कर, उपासना में तत्पर रहना, ईश्वर विरूद्ध न चलकर सृष्टि से उपकार लेना विवेक है।

## मुक्ति का तीसरा साधन षटक सम्पत्ति

शम–मन को धर्माचरण की ओर प्रेरित करना, दम–इन्द्रियों को दुष्कर्मों से हटाकर सुकर्मों में प्रेरित करना, उपरति–कुकर्मी तथा दुर्जनों से दूर रहना, तितिक्षा–नफा–नुकसान, सुख–दुःख, यश–अपयश को समान समझ मुक्ति साधनों में लगे रहना, श्रद्धा–वैदिक ग्रन्थों और वैदिक विद्वानों के उपदेशों पर विश्वास करना, समाधान–चित्त की एकाग्रता। छः प्रकार से कर्म करना।

**"तस्मादेवंविच्छान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः श्रद्धान्वितो भूत्वात्मन्येवात्मनं पश्चेत"**
(शत० १४/७/२/८)

**"तस्मादेवंविच्छान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मनं पश्यति"**
(वृह्दा० ४/४/२३)

अर्थात–ऐसा ज्ञानी शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु तथा श्रद्धायुक्त होकर आत्मा में परमात्मा का और परमात्मा में आत्मा का दर्शन करें।

शतपथ में समाधान का और वृहद में श्रद्धा का वर्णन नहीं है। इसके बिना शेष पाँच का अनुष्ठान संभव नहीं।

## मुक्ति का चौथा साधन मुमुक्षत्व

**मुमुक्षत्व**–जीव जीवन मे मुक्ति के अलावा कोई अन्य इच्छा न करे। जैसे भूखा अन्न के सिवा और प्यासे को जल के सिवा कुछ अच्छा नहीं लगता। ठीक वैसे ही अपने में मोक्ष प्राप्ति की ललक उत्पन्न करना।

**श्रवण चतुष्टय**–जिस प्रकार शरीर को जल से शुद्ध किया जाता है उसी प्रकार मन, बुद्धि ओर आत्मा को सत्य, ज्ञान ओर तप द्वारा शुद्ध किया जाता है। इसका सर्वोत्तम साधन सत्संग है। महापुरूषों का संसर्ग उन्नति कारक है। सत्संग से वाणी निर्मल होकर उसमें सत्य का संचार होता है। पाप दूर होकर चित्त आत्मिक सुख व आनन्द को प्राप्त करता है। सत्संग मोक्ष प्राप्ति का साधन है।

**"यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पुरूषम्।**
**तं त्वा सीसेन विध्यामों यथा नोऽसो अवीरहा॥"** (अथर्व वेद १/१६/४)

अर्थात–धार्मिक तथा विद्वान उपदेशक तथा सत्संग भी दुःखों से छूटने का उपाय है।

**सत्वगुण धारण**–यह ज्ञान से युक्त अवस्था है। मनुष्य शांत चित्त, प्रेम तथा शुभ विचारों से युक्त होकर निष्काम व निस्वार्थ भावना से शुभकर्म में प्रवृत होता है। वेदादि शास्त्रों का अध्ययन, मनन, और चिन्तन मे प्रवृत होता हुआ पवित्र उत्तम ज्ञान से युक्त होकर शुभकर्मों का अनुष्ठान करता है। जो मोक्ष प्राप्ति में सहायक है।

# जीवन के पुरूषार्थ

वेदों में आदेश है कि चार चीजों का ग्रहण और चार चीजों को ही छोड़ देना चाहिये। ग्रहण के योग्य हैं–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, यही जीवन के पुरूषार्थ हैं। यह चार गुण मनुष्य के मित्र हैं। मनुष्य के लिये त्याज्य है–काम, क्रोध, लोभ, और मोह। यह चार अवगुण मानव जीवन के शत्रु हैं।

**धर्म**– आर्य संस्कृति में धर्म का अत्यधिक महत्व है। धर्म का अर्थ है जिसे धारण किया जाय या जो धारण करे। धर्म का पर्यायवाची मजहब (Religion) होने से धर्म का व्यापक क्षेत्र बहुत ही संकुचित एवं लघु जान पड़ता है। माता–पिता का धर्म संतान की उचित परवरिश है, गुरू का धर्म शिष्य को आचारवान बनाना है। धर्म का अभिप्राय कर्तव्य पालन है। हमारा कर्तव्य है कि हम अपनी इन्द्रियों को स्वस्थ व बलवान बनाकर सत्कर्म की ओर प्रेरित करें। दूसरों के साथ द्वेष भावना न रखकर यथा योग्य वर्तना ही हमारा कर्तव्य है। मनु महाराज ने कहा है कि वेदानुसार सात्विक शुद्ध, निष्पक्ष, निस्वार्थ, भाव से किया गया कर्म ही धर्म है।

**''भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देव। भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।**
**स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँस स्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥''** (यजु० २५/२१)

अर्थात–हम कानों से भद्र सुनें, आखों से भद्र देखें। सुदृढ़ अंगो के द्वारा शरीर को पुष्ट करते हुए हम दिव्यगुण सम्पन्न आयु का उपभोग करें।

वास्तव में जब हम धर्म की रक्षा करते हैं तो धर्म भी हमारी रक्षा करता है।

**अर्थ**– उस सामग्री को जुटाना जिससे धर्म में प्रवृति और अधर्म से दूर रहे उसे अर्थ कहते हैं, साधारण भाषा में इसे धन या **'दौलत'** कहते हैं। ऋग्वेद १/१/३ मंत्र में कहा है कि अर्थ की पहली शर्त यही है कि उसे सुमार्ग द्वारा कमाया जाय, जिससे हमारा वास्तविक हित हो। अंग्रेजी मे धन को (Wealth) कहते हैं जो वील (Weal) से बना है जिसका अर्थ है भद्र। जिससे मानव में भद्र की उन्नति हो वह **'अर्थ'** अन्यथा **'अनर्थ'** या अभद्र है।

**काम**– मनुष्य में प्रतिपल धर्म और अर्थ के अनुकूल या प्रतिकूल अच्छी या बुरी कामनायें मन में उठती ही रहती है। अच्छी कामनायें जहां मनुष्य को यशस्वी और धर्मात्मा बनाती है वही प्रतिकूल इच्छायें पापी और अधर्मी बनाती है।

धर्म और अर्थ का अनुसरण ही मोक्ष प्रदान करने वाली है। यजु० ३४/१ में मन को प्रकाशों का प्रकाश कहा है। मन की कामनायें ही मनुष्य को ऊंचा उठाती हैं अर्थात प्रकाशित करती है। अतः मन की कामनायें शुद्ध और पवित्र होनी चाहिये। पुण्य चतुष्टय में काम एक पवित्र वस्तु है। यह धर्म और अर्थ की अनुगामिनी और मोक्ष तक पहुंचाने वाली है।

**मोक्ष**– मोक्ष अर्थात छुटकारा। मानव इस संसार का अंग है, संसार को छोड़कर वह कहाँ जा सकता है। वह जितना संसार से भागता है संसार परछाईं बनकर इसके साथ दौड़ता है। महात्मा बुद्ध ने धम्मपद में कहा है कि बैलगाड़ी का बैल दौड़ते समय सोचता है कि जितना तेज दौडूंगा गाड़ी के बोझ से छूट जाऊंगा। किन्तु गाड़ी के बन्धन के कारण वह जितना तेज दौड़ता है गाड़ी का बोझ उतनी ही तेजी से उसके पीछे दौड़ता है। गाड़ी का बन्धन जैसे ही टूटता है वैसे ही बैल बोझ से छूट जाता है।

ईश्वर की उपासना प्रतिक्षण उपासक की रक्षा करती है, उपासक पके फल के समान है। फल अपने वृक्ष से रूप, रस, गन्ध, पाकर फलता–फूलता है, पूर्ण विकसित अवस्था में स्वयं ही वृक्ष से पृथक हो जाता है क्योंकि अब उसे वृक्ष की आवश्यकता नहीं। मानव संसार रूपी वृक्ष का फल ही है संसार से ही फलता फूलता है। अविकसित और कच्चा मनुष्य न स्वयं संसार छोडता है न ही संसार उसे छोड़ता है। घर गृहस्थी से तंग आकर वह संसार से कितना ही भागे मन कच्चे फल के समान संसाररूपी वृक्ष से बंधा है जब तक उससे छूट नहीं जाता। पके फल के समान वही मनुष्य '**मोक्ष**' प्राप्त कर सकता है जिसने धर्म, अर्थ, काम की सिद्धि की हो। यह सिद्धि संसार रूपी वृक्ष पर ही प्राप्त की जा सकती है अलग होकर नहीं। अलग होना न उसके लिये हितकर है न संभव।

**पापचतुष्टय अर्थात चार त्याज्य चीजे काम, क्रोध, लोभ, और मोह**

**काम**– मन में उठने वाली बुरी वासनाओं का नाम '**काम**' है। नर का नारी से एवं नारी का नर से जो अनुराग है वही '**काम**' है। नर और नारी का सतोगुणी सम्बन्ध मनुष्य की उत्पत्ति का साधन है। लेकिन जब यही भावना दूषित हो जाती है तो व्यक्ति व्याभिचारी हो जाता है जिस व्यक्ति से उसका सम्बन्ध होता है वह नष्ट हो जाता है। कामातुर माता या पिता से धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष प्राप्त करने वाली संतान उत्पन्न नहीं हो सकती। इसिलिये '**काम**' को पाप–चतुष्टय में सबसे पहले त्याज्य बताया है।

**क्रोध**– क्रोध मस्तिष्क का विकार है जिसमें व्यक्ति बुद्धिहीन होकर अनर्थ कर डालता है। जैसे बिगड़े घोड़े पर बैठे सवार की दशा होती है वही दशा क्रोधी की होती है।

**लोभ**– धन या अन्य वस्तु के लिये अनुचित और असीमित प्रेम को '**लोभ**' कहते हैं। लोभी मनुष्य धन तो चाहता है किन्तु उसका उचित उपयोग नहीं कर सकता। लोभी स्त्री जहां अपना सतीत्त्व छोड़ देती हैं वहीं लोभी पुरूष चोरी, डाका, जुआ, रिश्वत, मक्कारी, फरेब करने लगता है।

**मोह**– किसी वस्तु के लिये अनुचित प्रेम '**मोह**' है। मोह भी बुद्धि को विकृत कर देता है।

पुण्य-चतुष्टय और पाप चतुष्टय एक दूसरे के विरोधी हैं। एक प्रकाश है तो दूसरा अंधकार। धर्म का जीवन एक यात्रा है और **'मोक्ष'** उसका अन्तिम पडाव है।

## अष्टाङ्ग योग

**योगागांनुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिशविवेकख्यातेः ॥** (योग २/२८)

अर्थात-योग के अंङ्गो का अनुष्ठान करने से अशुद्धि का क्षय-नाश होने पर ज्ञान का प्रकाश होता है, और वह विवेक ज्ञान पर्यन्त होता है।

योग के आठ अंङ्गो का यथा विधि आचरण से चित्त के क्लेश क्षीण होते हैं। साधक जैसे-जैसे योग के अंङ्गो का अनुष्ठान करता है वैसे-वैसे ही साधक के चित्त के दोष क्षीण होकर ज्ञान की चमक बढते-बढते अपने चरमोत्कर्ष पर पंहुच जाती है। जिससे चित्त की चंचलता, आलस्य-प्रमाद, अति काम, क्रोध, मोह, अंहकार, ईर्ष्या, द्वेष आदि गुणों की निवृत्ति होकर सात्त्विक गुणों का संचार होता है। इससे साधक के रहन-सहन, खान-पान, और आचार-विचार में भी अद्वितीय परिवर्तन होने लगता है। योग के निरन्तर अभ्यास से हृदय में विद्या-ज्ञान का प्रकाश हो साधक अपने जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष तक पहुंच जाता है। ऋषि दयानन्द लिखते हैं कि-**"चित्त की वृत्तियों को सब बुराईयों से हटाकर शुभकर्मों में स्थिर करके परमेश्वर के समीप में मोक्ष को प्राप्त करने को योग कहते हैं।"** वे आगे और लिखते हैं कि-**"जैसे जल के प्रवाह को एक ओर से दृढ़ बांध द्वारा रोक देने से जल जिस ओर नीचा होता है वहीं चलकर कहीं स्थिर हो जाता है, उसी प्रकार जब मन की वृत्ति भी जब बाहर से रूकती है, तब ईश्वर में स्थिर हो जाती है।"** योग के आठ अंङ्ग है।

**(1) यम-** अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि पाँच यम है। इनके द्वारा व्यक्ति अपने व्यवहार को नियन्त्रित करने की कोशिश करता है। यह सार्वभौम महाव्रत है।

**अहिंसा-** तन, मन और वाणी द्वारा संसार के किसी भी प्राणी को कष्ट न पहुंचाना, न ही ऐसी भावना मन में लाना अहिंसा है। द्वेष-भाव छोडकर सबसे प्रीतिपूर्वक व्यवहार करना। लेकिन राष्ट्र रक्षा के लिये सैनिकों का वध, राजा, न्यायाधीश द्वारा अपराधियों को दिया गया दण्ड हिंसा नहीं।

**सत्य-** जैसा देखा, पढ़ा, सुना और अनुमानित ज्ञान है, उसे वैसा ही बोलना और सत्य आचरण भी करना। सत्य से साधक के व्यक्तित्व व वाणी में वशीकरण की शक्ति पैदा होती है।

**अस्तेय-** कोई भी पदार्थ जिसके आप स्वामी नहीं उस पदार्थ को उसके स्वामी की आज्ञा के बिना लेना या मन में भी सोचना **'स्तेय'** है। तन, मन, धन से उचित पात्र को सहयोग न करना भी चोरी है।

**ब्रह्मचर्य**- मन व इन्द्रियों पर संयम कर वीर्य आदि शारीरिक शक्तियों की रक्षा करना, वेद व वेदानुकूल शास्त्रों का अध्ययन तथा ईश्वरोपासना करना ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य के पालन से साधक का ओज, तेज, क्रान्ति, वीर्य, बल व पराक्रम बढ जाता है।

**अपरिग्रह**- हानिकारक तथा अनावश्यक पदार्थ ही नहीं विचारों का भी संग्रह न करना अपरिग्रह है। आवश्यकता से अधिक धन व भोज्य पदार्थों को उन प्राणियों में वितरित करना जिन्हें उनकी आवश्यकता है। परिणामस्वरूप साधक विषयाशक्ति से रहित हो सदा जितेन्द्रिय रहता है।

**( 2 ) नियम**- यमों के अनुष्ठान का सम्बन्ध जहां अन्यों से है, वही नियमों का सम्बन्ध स्वयं साधक से है। इसके अनुष्ठान से साधक की शारीरिक, मानसिक व आत्मिक उन्नति होती है। यमों के पालन के बिना नियमों का पालन करना, पतन का कारण भी हो सकता है। नियम भी पाँच हैं।

**शौच**- जल द्वारा शरीर, वस्त्र व आवास की शुद्धि ब्राह्म शुद्धि है। लेकिन जब बार-बार जल शुद्धि के द्वारा भी यह शरीर सदा अशुद्ध ही बना रहता है, इस ज्ञान से साधक को शरीर की आसक्ति नहीं रहती, तब वह शरीर से मोह न करके आत्मा से मोह करता है।

सत्याचरण द्वारा मन की, ज्ञान द्वारा बुद्धि की तथा तप व विद्या द्वारा आत्मा की शुद्धि आन्तरिक शुद्धि है। आन्तरिक शुद्धि से मन की एकाग्रता एवं प्रसन्नता बढ़ती है। एकाग्रता से साधक जितेन्द्रिय होता है एवं आत्मा को जानने की योग्यता प्राप्त होती है।

**सन्तोष**-सदैव पुरूषार्थ एवं धार्मिक मार्ग द्वारा प्राप्त धन से व प्राप्त धन व भोज्य पदार्थों से सन्तुष्ट रहना संतोष है। कहा भी है **"सुख का मूल आधार संतोष है। अतः संतोष सुख को ही मोक्ष का सुख भी कहते हैं।"**

**तप**- उत्तम कर्मों को करने में हानि, अपमान, कष्ट, बाधा आदि आने पर भी धर्म के मार्ग को न छोड़ना तप है। गर्मी-सर्दी, सुख-दुःख, भूख-प्यास, मान-अपमान, लाभ-हानि, जय-पराजय, राग द्वेष आदि द्वन्दों से मन को अप्रभावित रखना तप है। इसके अनुष्ठान से अशुद्धि के क्षीण होने से साधक का शरीर तथा इन्द्रियाँ सदा दृढ व रोग रहित रहते है।

**स्वाध्याय**- साधक के वेद व वेदानुकूल सत्य शास्त्रों का पठन, मनन और चिंतन तथा वैदिक विद्वानों का सत्संग स्वाध्याय के अर्न्तगत आते हैं। प्रभु के गुणों का ध्यान, ओंकारादि पवित्र मंत्रो का जाप के साथ ईश्वर का स्मरण करना भी स्वाध्याय ही है। स्वाध्याय साधक के साधना के काम में सहायक हो जाता है।

**ईश्वर प्रणिधान**- परमपिता परमेश्वर को अपना सब कुछ अर्पित कर श्रेष्ठतम कर्म करता हुआ स्वयं को भी ईश्वर को अर्पित कर देना ईश्वर प्रणिधान है। इससे साधक अविद्यादि क्लेशों तथा उनके संस्कारों का नाश कर मोक्ष के आनन्द का अधिकारी बन जाता है।

**( 3 ) आसन**– रीढ़ की हड्डी को सीधी रख कर बिना हिलेडुले सुखपूर्वक जिस स्थिति में बैठकर ईश्वर का ध्यान किया जाय साथ ही शरीर के किसी अंग को पीड़ा भी न हो, उस स्थिति को आसन कहते हैं। आसन सिद्धि से ही प्राणायाम, जप, सन्ध्या, ध्यान आदि संभव हैं। यह ध्यानात्मक आसन है। दूसरे ऐसे आसन है जिनका सम्बन्ध शारीरिक व मानसिक आरोग्य से है।

**( 4 ) प्राणायाम**– उपर्युक्त आसन सिद्ध कर विधि पूर्वक, विचार से यथाशक्ति श्वास प्रश्वास की गति को रोकने की क्रिया को प्राणायाम कहते हैं। बाह्य, आभ्यान्तर, स्तम्भवृत्ति और बाह्य आभ्यान्तर विषयाक्षेपी प्राणायाम के चार प्रकार हैं प्राणायाम से मन की वृत्तियों के निग्रह करनें में सफलता मिलती है। ऋषि लिखते है–**''जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्णादि धातुओं का मल नष्ट होकर शुद्ध होते हैं वैसे प्राणायाम करके मन आदि इन्द्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं।''**

**( 5 ) प्रत्याहार**– इन्द्रियों का अपने विषयों के साथ सम्बन्ध न रहने पर मन के स्वरूप जैसा हो जाना प्रत्याहार है। साधक विवेक वैराग्य द्वारा जब तन पर नियन्त्रण कर लेता है तब वह इन्द्रियों पर स्वतः विजय पा लेता है, तब साधक को ईश्वर में प्रीति, परमरस व परमसुख का अनुभव होने लगता है।

यह यम से लेकर प्रत्याहार पर्यन्त बहिरंग योग है। धारणा, ध्यान, समाधिरूप अन्तरंग योग है।

**( 6 ) धारणा**– मस्तक, नासिका, कण्ठ, नाभि, हृदय आदि किसी एक स्थान पर मन को स्थिर करना धारणा है। धारणा का सतत अभ्यास एकाग्रता कहाती हैं।

**( 7 ) ध्यान**– धारणा वाले स्थान पर मन को स्थिर करके, ईश्वर के वास्तविक स्वरूप के ज्ञान का लगातार बने रहना ध्यान है। ध्यान के लिये मन की प्रसन्नता आवश्यक है। ध्यान की इस अवस्था में शरीर अत्यन्त भारहीन मन सूक्ष्म तथा श्वास–प्रश्वास अलक्षित प्रतीत होते है। दूर प्रतीत होने वाला ईश्वर समीप अनुभव होने लगता है। ध्यान से साधक को शारीरिक दुख कम या अत्यन्त कम सतायेगें।

**( 8 ) समाधि**– ध्यान की उत्कर्ष अवस्था समाधि है। इसमें वस्तु तत्त्व (ईश्वर) प्रधान हो जाता है और साधक अपने को भूल सा जाता है। समाधि में ज्ञाता–ज्ञेय व ज्ञान का भेद नहीं रहता। यह अवस्था अनुभव ही की जा सकती है, जहां साधक अपने परमलक्ष्य परमात्मा के परमानन्दस्वरूप में निमग्न होकर सर्वथा शुद्ध, पवित्र, निर्मल हुआ ज्ञान प्रकाश से प्रकाशमय एवं उसके आनन्द से आनन्दमय होकर स्वरूप शून्य जैसा हो जाता है।

आत्मा में समाया हुआ परमात्मा समाधिस्थ शांत आत्मा में अपनी प्रेरणा से अपना अनुभव करा देता है, यह अनुभव ही जीवनमुक्ति है और मोक्ष का प्रमाण भी।

## पाँच क्लेश

अविधा, अस्मिता, राग, द्वेष, और अभिनिवेश पाँच क्लेश है।

**अविधा**–समस्त क्लेशों का मूल अविधा है। जब ज्ञान–विज्ञान के विपरित मनुष्य की धारणा बन जाती है तब वह ज्ञानप्रद कम व श्रद्धाप्रद अधिक हो अविधा में भटकता है। वास्तविकता को न स्वीकारना और मिथ्या को सच मानना अविधा है।

**अस्मिता**–आत्मा और बुद्धि की भिन्नता को न स्वीकारना अस्मिता है। अभिमान के नाश होने पर ही गुणों के ग्रहण में रूचि होती है।

**राग**– मानव जीवन सांसारिक सुख–सुविधाओं से पूर्ण होता है। वह भोग-विलास में इतना डूबा रहता है कि उससे वंचित होना उसके लिये कष्टकारक है यही राग है हर संयोग का वियोग होता है यही ज्ञान इस क्लेश को मिटाता है

**द्वेष**– जीवन में विघ्न आते ही मानव आक्रोश से भर जाता है, यह द्वेष है।

**अभिनिवेश**– मनुष्य जीवन में संस्कारवत् या स्वभावगत जन्मजात भय छिपा होता है बच्चों में साहस, भय, निर्दयता, सहनशीलता आदि प्रारब्ध से ही दिखाई देते हैं। मृत्यु का भय सभी जीवों को स्वभावतः होता है यही अभिनिवेश है। इन क्लेशों का निर्मूलन मुमुक्ष को अवश्य करना चाहिये।

## उपसंहार

हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं कि महर्षि दयानन्द की मोक्ष सम्बन्धी विचारधारा सर्वथा अनूठी, अनुपम एवं अद्वितीय ही नहीं अन्य साम्प्रदायिक आचार्यों द्वारा प्रतिपादित मोक्ष सम्बन्धी विचारों की तुलना में अधिक तर्कपूर्ण, युक्तिसंगत, बुद्धिसंगत, बुद्धिगम्य, वैज्ञानिक तथा वेदानुकूल है। आवश्यकता इस बात की है कि उनके इन तार्किक, युक्तियुक्त वैदिक विचारों का पुर्वाग्रहमुक्त गम्भीर अध्ययन किया जाये और संसार को बताया जाये कि मोक्ष का जो वैदिक मार्ग ऋषि बता गये है उस पर चले बिना कल्याण नहीं। अतः निष्काम भावना से कर्म करते हुए ज्ञान व ईश उपासना से मुक्ति को पाने का प्रयास करें। कई मत ईश्वर को मिथ्या बताने का दुस्साहस करते हैं। कोई उनसे पूछे कि फिर आनन्द कहां से पाएं? सार्वभौम व सर्वहितकारी वैदिक धर्म अन्य विषयों की भांति यहां भी वैज्ञानिक रूप से स्पष्ट है इसके अनुसार संसार में रहते हुए श्रेष्ठ कर्मों द्वारा सर्वकल्याणार्थ खूब पुरूषार्थ करके तत्वज्ञान प्राप्त कर मनुष्य जीवन के वास्तविक लक्ष्य ब्रह्म को जानना चाहिये। निस्वार्थ भाव से कर्म करते हुए ज्ञान प्रकाश बढाकर अपने महान लक्ष्य को भेद कर ओर मोक्ष सुख प्राप्त करना चाहिये।

स्वामी सेवानन्द सरस्वती (स्वतन्त्रता सेनानी)

Printed at : Motherland Printing Press, Jaipur Ph.: 0609179